THE

AMBADAS CHAWARE

DIGAMBARA JAINA GRANTHAMALA

OR

Karanja Jaina Series

Edited-

With the Cooperation of Various scholars

By—

Hiralal Jain, M. A., L L. B.,
King Edward College, Amraoti.

Volume II.

Published by—

Karanja Jaina Publication Society,
Karanja, Berar, India.

Savayadhammadoha

An Apabhramsa work of the 10th century.

Critically edited

With Introduction, Translation, Glossary, Notes and Index

By

Hiralal Jain, M. A., L L. B.,
Asstt Professor of Sanskrit,
King Edward College, Amraoti;
Sometime Research Scholar, Allahabad University.

1932.

एहु धम्मु जो आयरइ बंभणु सुद्दु वि कोइ ।
सो सावउ किं सावयहं अण्णु कि सिरि मणि होइ ॥७६॥

प्राक्कथन

प्रस्तुत ग्रन्थ के दर्शन प्रथम बार मुझे सन् १९२४ में कारंजा के सेनगण भण्डार में हुए थे और उस प्रति पर से इस ग्रन्थ का परिचय सन् १९२६ में प्रकाशित Catalogue of Sanskrit and Prakrit Mss in C P. & Berar में दिया गया था। उस परिचय से कई विद्वानों का ध्यान इस ग्रन्थ की ओर आकर्षित हुआ और उसे प्रकाशित कराने के लिये मुझ पर आग्रह होने लगा। किन्तु एक ही प्रति परसे इस का सम्पादन करने का मुझे साहस नहीं हुआ, इससे ठहरना पड़ा। अगले वर्ष इस ग्रन्थमाला की नींव डाली गई और तबसे ग्रन्थ की अन्य पोथियों की खोज में विशेषरूप से प्रयत्नशील होना पड़ा। सन् १९३० में हिन्दुस्तानी एकाडेमी, यू. पी., के अध्यक्ष श्रीयुक्त डॉ. ताराचन्द्रजी एम.ए., डी. फिल., ने इस ग्रन्थ को देखने की इच्छा प्रकट की। किन्तु उस समय तक हमारे हाथ में इसकी उपर्युक्त एक ही वही प्रति थी और उसकी प्रथम कापी तैयार की जा रही थी इससे वह भेजी नहीं जा सकी। धीरे धीरे अन्य प्रतियों का पता चला और उसी अनुसार इसका संशोधन होता गया। अबतक हमें इसकी ग्यारह पोथियों का पता चला है जिनका परिचय 'संशोधन सामग्री' में कराया गया है।

पहले हमारा विचार ग्रन्थमाला के अन्य ग्रन्थों के सदृश इसका सम्पादन भी अंग्रेजी में करने का था। किन्तु अनेक मित्रों व ग्रंथमाला के सहायकों का आग्रह हुआ कि अपभ्रंश भाषा के कुछ ग्रन्थ हिन्दी में भी सम्पादित होना चाहिये ता कि हिन्दी संसार में उक्त दोनों भाषाओं का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से झलक जाये। तदनुसार इस ग्रन्थ का सम्पादन हिन्दी में करने का निश्चय हुआ। आगे प्रकाशित होने वाले ग्रन्थों में भी अनेक ग्रन्थों का हिन्दी में सम्पादन करने का विचार है।

इस [illegible] के [illegible] में हमें हमारे मित्र श्रीयुत ए.एन.उपाध्ये एम. ए., [illegible] प्रोफेसर, राजाराम कालेज, कोल्हापुर, से बहुत सहायता मिली है। उन्होंने [illegible] प्राप्त होने के पूर्व मुझे उस प्रति को [illegible] लिये [illegible] देखने के लिये भेजने की कृपा की तथा पत्रों द्वारा [illegible] परिचय कराया। सन् १९३१ के Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute में [illegible] Joindu and his Apabhramsa [illegible] लेख प्रकाशित हुआ है। हमने उस लेख से भी सहायता ली है। [illegible] हमने आपके पास विचार के लिये [illegible] प्रकट करने की कृपा की। [illegible] है। इस सब सहायता के लिये हम आपका बहुत [illegible] मानते हैं।

[illegible] डाक्टर पी. एल. वैद्य, एम. ए., डी. लिट्. [illegible] इंस्टीट्यूट, पूना, की [illegible] हम आपका आभार मानते हैं।

[illegible] श्री [illegible], [illegible] हमें [illegible] हैं।

[illegible]

[illegible]

माला को सफल बनाने में आप बहुत कुछ कारणीभूत हुए हैं जैसा कि हम प्रथम ग्रंथ की प्रस्तावना में कह चुके हैं।

मान्यवर गोपाल अम्बादासजी चवरे, कारंजा, इस ग्रन्थमाला के जीवनाधार हैं। आपकी प्राचीन जैन साहित्य को उत्तम ढंग से प्रकाशित देखने की बड़ी उत्कण्ठा है। आपकी ही प्रेरणा से हमें इस कार्य में विशेष उत्साह हुआ है। आपका उपकार चिरस्मरणीय है।

सरस्वती प्रेस अमरावती, के मैनेजर श्रीयुक्त टी. एम. पाटील तथा प्रेस के अन्य कर्मचारियों ने इस ग्रन्थ को छापने में बड़ी रुचि और सावधानी दिखाई है इसके लिये मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूं।

इस ग्रन्थमाला का प्रधान उद्देश्य प्राचीन जैन साहित्य को इस ढंग से प्रकाशित करने का है कि जिससे साहित्यिक दार्शनिक व ऐतिहासिक खोज में विशेष सहायता पहुंचे। यह हम माला के प्रथम ग्रन्थ में ही प्रकट कर चुके हैं। यदि उस उद्देश्य की प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा किसी अंश में पूर्ति हुई तो हम व हमारा मण्डल अपने प्रयास को सफल समझेंगे। इसी दिशा में किसी प्रकार की कमी व त्रुटि की पूर्ति के सम्बन्ध में हमारे विद्वान् पाठक जो सम्मति प्रदान करने की कृपा करेंगे उसका हार्दिक स्वागत किया जायगा।

किंग एडवर्ड कालेज,
अमरावती
अनन्त चतुर्दशी, वि. सं. १९८९.

हीरालाल

विषयसूची

	पृष्ठ
प्राक्कथन	-)।
भूमिका	=)।-।।-)
१ संशोधन सामग्री	=)।
२ ग्रन्थकर्ता	≡)।
३ ग्रन्थ का नाम, प्रचार, टीका-टिप्पनी व परम्परा	।-)।।।
४ भाषा और व्याकरण	।≡)
सावयधम्मदोहा, मूल पाठ, पाठभेद व अनुवाद	१-६७
परिशिष्ट (अधिक दोहे सानुवाद) ...	६८-७१
शब्दकोश	७२-१०४
टिप्पनी	१०५-१२०
दोहों की वर्णानुक्रमणिका	१२१-१२५
शुद्धिपत्र	१२६

भूमिका

१ संशोधन सामग्री।

अद्यावधि माधवानलकामकंदला की प्राचीन हस्तलिखित जो प्रतियाँ हमारे देखने में व हो सुनने में आई हैं। इनमें से चुनी हुई चार प्रतियों (अ ब क द) का आपस में मिलान करके प्रस्तुत संस्करण में इनके पाठ भेद अंकित किये गये हैं व इनसे यथा स्थान सहायता भी ली गई है। इन प्रतियों का परिचय इस प्रकार है—

अ. प्रति मोतीकटरा, आगरा, के दिगम्बर जैन मंदिर की है। पत्र संख्या-१८, आकार ९½"×५", पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ — ७ से ९ तक, वर्ण प्रतिपंक्ति लगभग ३०, हाँसिया ऊपर नीचे- १", दाँयें बाँयें १½"। प्रारम्भ का एक और अन्त के दो पत्र दूसरे हाथ के लिखे हुए हैं। अनुमानतः पहले पत्र जीर्ण शीर्ण होजाने से उनकी नकल करके वे पत्र जोड़ दिये गये हैं। जीर्ण पत्रों का अब पता नहीं है।

प्रारम्भ-ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

अंत-इति माधवानलकामकंदला संबंधोपाख्यान संपूर्ण ॥ शुभं भवतु ॥

इस प्रति में कुल दोहों की संख्या ५१५ है। अधिक दोहा [illegible] दिये हैं। १० वें दोहे के [illegible] कुछ भिन्न है [पाठभेद में दिये]। इसके पाठ क. प्रति से अधिक मिलते हैं।

ब. प्रति [illegible] की है। पत्रसंख्या- १६ आकार- ११"×५", पंक्तियाँ प्रतिपृष्ठ- ९, वर्ण प्रतिपंक्ति- लगभग ३० हाँसिया ऊपर नीचे-½", दाँये बाँये- १"।

प्रारम्भ–ॐ नमः श्री पार्श्वनाथाय ह्रीं धरणेन्द्रपद्मावतीसहिताय।

अन्त–इय दोहाबद्धवयधम्मं देवसेनं उवदिट्ठं ।

लहुअक्खरमत्ताहीयमो पय सयण खमंतु ॥

इय दोहाबद्धसावयधम्मसम्मत्तं लिखितमिदं जगतकीर्ति संवत् १७८० कुवार वदि १४ इदयनप्रमध्यात् लिखितमिदं ।

इसमें कुल दोहों की संख्या २३५ है और एक संस्कृत श्लोक 'उक्तं च' रूप से उध्दृत किया गया है (परिशिष्ट देखिये)। इसके पाठ अ. प्रति से अधिक मिलते हैं।

ज. प्रति जयपुर के तेरापंथी मंदिर की है। पत्रसंख्या– ११, आकार– १०½" × ४½"; पंक्तियाँ प्रतिपृष्ठ– १३, वर्ण प्रति पंक्ति– लगभग ३५; हाँसिया ऊपर नीचे–½"; दाँये बाँये–१½".

प्रारम्भ– श्री जिनाय नमः ।

अन्त— इति श्रावकाचारदोहकं समाप्तं ।

इसमें कुल दोहों की संख्या २२३ है। दोहा नं २१९ नहीं है। नंबर देने में त्रुटि के कारण प्रति के अन्तिम दोहे पर नं २२१ आया है।

द. प्रति पंचायती दिगम्बर जैन मंदिर, देहली, की है। पत्रसंख्या ११, आकार–११¾"×५"; पंक्तियाँ प्रतिपृष्ठ–९ से ११ तक, वर्ण प्रति पंक्ति–लगभग ३१, हाँसिया ऊपर नीचे–¾", दाँये बाँये– १" दोहों की संख्या २१४.

प्रारम्भ– ॐ नमो वीतरागाय ।

अन्त–इति श्रावकाचारदोहक समाप्तम् ।

अथ संवत्सरेऽस्मिन श्री नृपविक्रमादित्यराज्ये संवत् १६०१ वर्षे । श्रावण वदि ११ शुक्रवारे । मूलनक्षत्रे । ...

नामधेये । श्रावक उपयोगे । धर्मव्याख्यानने । श्रीदादि आदरेणसा हिराज्यप्रवर्तमाने । श्रीजैनसंघे प्रवर्तते तत् शिष्यणी श्रीललीमलसंतोषिणी व ई देवकालेखापित आत्मार्थे ।
शुभं भवतु कल्याणमस्तु इत्यादि चार श्लोक.

प्रशस्ति से इसे ज्ञात होता है कि यह प्रति विक्रम संवत् १६०२ सन् १५४६ ईस्वी में लिखी गई थी और उस समय दिल्ली के तख्त पर सलेमशाह (शेरशाह सूर का बेटा सलीमशाह सूर) था। यह प्रति सूरवंश के इतिहास के लिये महत्वपूर्ण है।

ख. प्रति जयपुर के बडे तेरहपंथी जिन मंदिर की है। पत्र संख्या–१९, पृष्ठ संख्या– ११४ हाशिये पर लिखा है।

अन्त– इति उपासकाचारे आचार्य श्री लक्ष्मीचन्द्रविरचिते दोहकसूत्र लि समाप्ति। संवत् १५५५ वर्षे कार्तिक सु १५ सोमे श्रीमूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे... अक्षरस्यपि...

यह प्रति वि. सं. १५५५ तदनुसार सन् १४९८ ईस्वी की लिखी हुई है... पाण्डुलिपि में लिखने का समय भी दिया गया है ... पूर्वोक्त ग्रन्थ की मूल पाठ के लिपि करने की पूरी सुविधा रही।

ग. १ यह प्रति भी ... की है। पत्र संख्या ... की संख्या– ११४, लिपि का समय नहीं दिया गया।

घ १. यह प्रति भी ... की है। पत्र संख्या ... की संख्या– ११०, लिपि करने का समय– संवत् १६११ ... ११.

नं. [illegible] की [illegible] है। [illegible] संवत्— [illegible], जिसमें [illegible] का [illegible] नहीं दिया है।

[illegible] पूना, [illegible] है। [illegible] संवत्— [illegible] है। [illegible] ([illegible]) [illegible] है। [illegible] है। [illegible] किया गया है। [illegible]

[illegible]

ही गुटके में बंधी हुई है। इन प्रतियों को हमने नहीं देख पाया। उनका परिचय हमें हमारे मित्र श्रीयुत ए. एन. उपाध्ये, एम. ए., अर्धमागधी प्रोफेसर, राजाराम कालेज, कोल्हापुर, के एक पत्र से प्राप्त हुआ है।

२ ग्रन्थकर्ता

यह ग्रन्थ किसका बनाया हुआ है यह प्रश्न बड़ा जटिल है। ग्रन्थ के मूलभाग में कर्ता का कहीं, कोई, किसी प्रकार का भी उल्लेख नहीं पाया जाता। किन्तु जिन हस्तलिखित प्रतियों का ऊपर परिचय दिया गया है उनमें से अनेक के अन्त में ग्रन्थसमाप्तिसूचक वाक्यों में ग्रन्थकर्ता का नामोल्लेख किया गया है। हम यहां इन्हीं उल्लेखों की सूक्ष्म जांच कर सच्चे ग्रन्थकर्ता के पता लगाने का प्रयत्न करेंगे।

इन पोथियों (प; भ. भ २.) में यह ग्रन्थ लक्ष्मीचन्द्रकृत या विरचित कहा गया है। विद्यानन्दि के शिष्य श्रुतसागर कृत षट्प्राभृत टीका में इस ग्रन्थ के आठ दोहे उद्धृत किये गये हैं और दो स्थानों पर इन दोहों के कर्ता स्पष्ट रूप से लक्ष्मीचन्द्र या लक्ष्मीधर कहे गये हैं– 'तथा चोक्तं लक्ष्मीचन्द्रेण गुरुणा', 'तथा चोक्तं लक्ष्मीधरेण भगवता'। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये दोनों नाम एक ही व्यक्ति के बोधक हैं। इससे भी उक्त प्रतियों के कथन की पुष्टि होती है। षट्प्राभृतटीका की प्रकाशित पुस्तक की भूमिका में जो श्रुतसागर का परिचय दिया गया है उससे ज्ञात होता है कि लक्ष्मीचन्द्रजी उनके समकालीन थे तथा उनकी गुरुपरम्परा इसप्रकार थी– विद्यानन्दि– मल्लिभूषण– लक्ष्मीचन्द्र। उनकी एक चेली ने श्रुतसागर कृत 'महाभिषेकटीका' को अपने हाथ से लिखकर संवत् १५८२ में पूरा किया था। इन उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि लक्ष्मीचन्द्र ही प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्ता थे, जो कि संवत् १५८२ के लगभग हुए हैं।

किन्तु भ. प्रति में जो अन्तिम दोहा है उससे इस कथन की सत्यता में सन्देह उपस्थित हो जाता है। इस दोहे से प्रस्तुत ग्रन्थ के साथ

८६ दाणु कुपत्तहं दोसडइ
मोलिसइ णहु भंति ।
पत्थरु पत्थरणाव कहि
दीसइ उत्तारंति ॥

११२ गमणट्ठियहं तरंडउ वि
भइय ण पावइ पारु ।

१२१ लोहकडि कुत्तारतरणि
णाय निवारिय तेण ।

८९ काइं बहुत्तइं संपयइं
जइ किविणहं घरि होइ ।

९१ जो घरि हुंतइं धणकणइ
मुणिहिं कुभोयणु देइ ।
जम्मि जम्मि दालिद्दडउ
पुट्ठि ण तहु छंडेइ ॥

९६ कप्पमाई भोयधरिणिहि

९० घरे घरि दमु कप्पयरु जहिं
ते पूरहिं अहिलासु ।

१३१ घम्में सुज्झइ अंतडउ
छिज्जइ बंधणु तेण ।

५४७ पत्थरमया वि दोणी
पत्थरमप्पाणयं च बोलेइ ।
जह तह कुच्छियपत्तं
संसारे चेव बोलेइ ॥

१८७ जह पाहाणतरंडे
लग्गो पुरिसो हु तीरणी तोए
बुड्ड विगयाधारो...

५४९ लोहमए कुतरंडे
लग्गो पुरिसो हु तीरणीनइे ।

५५९ किविणेण संचयधण
ण होइ उवयारियं जहा तस्स ।

५३६ जो पुण हुंतइं धणकणइं
मुणिहिं कुभोयणु देइ ।
जम्मि जम्मि दालिद्दडउ
पुट्ठि ण तहो छंडेइ ॥

५८७ पुण्णबलेणुप्पज्जइ
कइयवि पुरिसो य भोयभूमीसु
भुंजेइ तत्थ भोए
दहकप्पतरुसमोवे दिव्वे ॥

५९१ पायव दसप्पयारा
चिंतियं दिंति मणुयाणं ।

१० सव्वइं जलेण सुद्धि
२० धो इह जलेण सुज्झइ
२३ ण्हंता वि ते ण सुद्धा
२४ किं सुज्झइ तेण ण्हंतं

१७० सुरगयमणि तलाउ	३९२ जइ पिच्छिइ [illegible] अणवरयं [illegible] [illegible]
१८६ जइ सरवरि णदसारिणइ पालिउ होइ अगाहु ।	३२९ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
१८१ जलधारा जिणवयणउ एवइ पणासइ णाणु ।	४७० पयमइ [illegible] [illegible] [illegible]

इन अवतरणों में भाव, भाषा व उक्तिवैचित्र्य का [illegible] है। इसके अतिरिक्त कुछ शब्दों का साम्य भी [illegible]

[illegible] (सा. ५६, मा. ५७६), [illegible] मा. १११ आदि); तलाव (सा. १७०, मा. ३०[illegible] मा. ४१५), [illegible] (सा. १२४, १५८, मा. [illegible] मा. ५४९), [illegible] (सा. १२५, मा [illegible]). [illegible] है १७१ वीं गाथा के 'पिठर' का ही [illegible] टिप्पणी)।

यथार्थ में सावयधम्म के २१० [illegible] ५११ तक की ३५० गाथाओं के विषय, [illegible] है। यही एक ही विषय दोनों में [illegible]

१. पात्र और दान का विवेक [illegible]
२. पूजादि सर्वसावद्य [illegible]
३. [illegible] और [illegible]
४. धर्म से स्वर्ग [illegible]

किसी किसी विषय का एक ग्रन्थ में उल्लेख मात्र तथा दूसरे में उसका पूरा विवरण मिलता है, जिससे ये दोनों ग्रन्थ एक दूसरे के परिपूरक से ज्ञात होते हैं; जैसे—

१. अष्टमूलगुण व बारह व्रत का भावसंग्रह की ३५२ व ३५६ वीं गाथाओं में उल्लेख मात्र है। सावयधम्म के १० से ५२ तक के ४३ दोहों में इन्हीं का सविस्तर वर्णन है।

२. भावसंग्रह की ३७५ वीं गाथा में तीर्थंकर के अष्ट प्रातिहार्य का उल्लेख मात्र है। सावयधम्म में उन आठों का आठ दोहों (१७०–१७७) में काव्य की रीति से वर्णन है।

३. सावयधम्म के २१२ वें दोहे में सिद्धचक्र की स्थापना का बहुत सूक्ष्म उल्लेख है। इसी विषय का भावसंग्रह की ४४३–४५६ गाथाओं में बहुत विशद वर्णन है।

इस प्रकार इन दोनों ग्रन्थों में एक ही कर्ता का हाथ दिखाई देता है। विशेषतः सावयधम्म का जो ९३ वाँ दोहा भावसंग्रह के ५११ नं० का वैसा का वैसा पाया जाता है उससे इस विषय में बहुत कम सन्देह रह जाता है। भावसंग्रह जिन दो हस्तलिखित प्रतियों पर से छपाया गया है उनमें से एक प्रति में यह दोहा 'उक्तं च' करके पाया गया है। किन्तु अधिक पुरानी प्रति में 'उक्तं च' शब्द नहीं है। यदि 'उक्तं च' शब्द मूल के ही मान लिये जांय तो इससे यही सिद्ध होता है कि सावयधम्म की रचना भावसंग्रह से पूर्व हो चुकी थी और कर्ता ने उस दोहे को यहां प्रसंगोपयोगी जान उद्धृत कर दिया। ऐसी रीति देवसेनजी के अन्य ग्रन्थों में भी पाई जाती है। इसी भावसंग्रह में उनके दर्शनसार की अनेक गाथायें आई हैं। उस दोहे को प्रक्षिप्त मानने का न तो कोई प्रमाण है और न कोई कारण।

एक और बात है जो प्रस्तुत ग्रन्थ को देवसेनकृत स्वीकार करने में बड़ा सहायता पहुंचाती है। देवसेनकृत जिन ग्रन्थों का उल्लेख हम ऊपर कर

यदि उक्त मान्यताओं का यही ठीक मापदंड हो तो इससे उससे ही की पुष्टि प्राप्त होती है। एक तो यह कि दोहा छंद का आविष्कार उस समय मंगल गया था और पश्चिम मंडली में वह देश ?? से देखा जाता था। दूसरी यह कि देवसेन को इस छंद में ग्रन्थरचना करने की रुचि थी। उनके भावसंग्रह में ही पांच पद्य अपभ्रंश भाषा के इसी छंद के पाये जाते हैं और शेष ग्रन्थ में भी अपभ्रंश भाषा का अधिक प्रभाव दिखता है। भावसंग्रह का विषय दार्शनिक एवं पूर्ण न्याय था। अतः 'शुभंकर' के कुचक्र से उसका दोहाबद्ध रूप नष्ट कर दिया गया। किन्तु सावयधम्म साधारण गृहस्थों के लिये लिखा गया था इससे यह उस कुचक्र से बच गया।

सौभाग्य से देवसेनजी के समय व देश के सम्बन्ध में कोई अनिश्चय नहीं है। उन्होंने अपने दर्शनसार ग्रन्थ के अन्त में स्पष्ट रूप से कह रक्खा है कि उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना धारा नगरी के पार्श्वनाथ मंदिर में बैठकर संवत् ९९० की माघ सुदि १० मी को समाप्त की। यथा—

'पुव्वायरियकयाइं गाहाइं संचिऊण एयत्थ।
सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संवसंतेण ॥ ४९ ॥

रइओ दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए णवए।
सिरि पासणाहगेहे सुविसुद्धे माहसुद्धदसमीए ॥ ५० ॥

धारा नगरी व मालवा प्रान्त में सदैव विक्रम संवत् का प्रचार रहा है तथा दर्शनसार में अन्यत्र जहां जहां संवत् का उल्लेख आया है वहां कर्ता ने स्पष्टतः 'विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स' ऐसा कहा है। इससे उपरोक्त संवत् के भी विक्रम संवत् होने में कोई संदेह को स्थान नहीं है। धारानगरी विद्वानों के जुड़ाव के लिये प्राचीन काल में प्रसिद्ध ही रही है। प्राकृत भाषा का भी वहां अच्छा पठन होता रहा है। उपलब्ध प्राचीनतम प्राकृत कोष 'पाइयलच्छी–नाम–माला' की रचना भी जैन कवि धनपाल ने

विक्रम संवत् १०९९ में यहीं की थी व यहीं के निवासी प्रभाचन्द्र पंडित ने विक्रम संवत् १११२ के आसपास पुष्पदन्त के अपभ्रंश काव्यों पर टिप्पण लिखे थे। (देखो णायकुमारचरिउ, भूमिका)।

अतः सिद्ध हुआ कि प्रस्तुत सावयधम्मदोहा के कर्ता देवसेन [illegible] उसकी रचना विक्रम संवत् ९९० के लगभग मालवा प्रान्त की धारा नगरी में हुई है तथा यह ग्रन्थ दोहा छंद का एक प्राचीनतम उदाहरण है।

३ ग्रन्थ का नाम, प्रचार, टीकाटिप्पनी व परम्परा.

इस ग्रन्थ का विषय श्रावकों का धर्म व आचार है। इस विषय के जैन ग्रन्थों का नाम प्रायः श्रावकाचार व उपासकाचार [illegible] रखा जाता है। तदनुसार ही प्रस्तुत ग्रन्थ अधिकांश पोथियों में 'श्रावकाचार दोहक' या 'उपासकाचार' कहा गया है। किन्तु मूल ग्रंथ में यह नाम कहीं नहीं पाया जाता। 'श्रावकाचार' शब्द तक मूल ग्रन्थ में कहीं नहीं आया। ग्रन्थकर्ता ने प्रथम ही दोहे में इसे 'सावयधम्म' कहा है व अन्त में (२२४ वां दोहा) इसे 'धम्मधेणु संदोहयं' 'दोहों की धर्मधेनु' कहा है। क. प्रति में ग्रन्थ का नाम 'दोहाबद्ध सावयधम्म' दिया गया है। यही नाम कर्ता को अभीष्ट ज्ञात होता है। तदनुसार ही प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम 'सावयधम्म-दोहा' रक्खा गया है।

जान पड़ता है जैन मन्दिरों में इस ग्रन्थ का कुछ अच्छा प्रचार रहा है, इसी से इसकी हस्तलिखित प्रतियां दिल्ली, आमेर, जयपुर, कारंजा व पूना में पाई गई हैं। कई प्राचीन लेखकों ने इसके सुंदर दोहे अपनी कृतियों में उद्धृत किये हैं। 'दोहा पाहुड*' में इसका एक दोहा (२११) ज्यों का त्यों आया है। श्रुतसागर ने अपनी षट्प्राभृत टीका में इसके अनेक दोहे (१०५, १०९,

* यह ग्रन्थ भी अपभ्रंश दोहों में है। इसे भी इस ग्रन्थमाला में प्रकाशित करने का प्रबन्ध हो रहा है।

कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि यदि इसके कर्ता प्रभाचन्द्र नामधारी थे तो वे पुष्पदन्त के अपभ्रंश काव्यों पर टिप्पण लिखने वाले वे प्रभाचन्द्र नहीं हो सकते जिनका हम ऊपर उल्लेख कर आये हैं। प्रभाचन्द्र नामके अनेक मुनि और कर्ता हुए हैं (देखो 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार भूमिका पंडित जुगलकिशोर मुख्तार कृत, व जैनशिलालेखसंग्रह भाग १)। यह कृति कोई बहुत प्राचीन ज्ञात नहीं होती।

अब प्रश्न यह है कि इन दोहों की लक्ष्मीचन्द्रकृत 'पंजिका' कौनसी है। हमारा अनुमान है कि जो टिप्पण प. प्रति पर पाया जाता है वही यह पंजिका है। उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार टिप्पण और पंजिका में कोई बड़ा भेद ज्ञात नहीं होता।

अब हम पूर्वोक्त पोथियों की विशेषताओं पर से इस ग्रन्थ की परम्परा का कुछ अनुमान कर सकते हैं। देवसेनकृत मूल ग्रन्थ वि सं. ९९० के लगभग तैयार हुआ। आगामी पांच सौ वर्षों में इसकी तीन प्रकार की प्रतियां प्रचलित होगई। एक में कर्ता का नाम देवसेन पाया जाता था इसलिये हम इसे दे. प्रति कहेंगे। इसी पर से ह. अर्थात् हृदयनगर की वह प्रति तैयार हुई जिसमें ग्यारह दोहे और जुड़ गये तथा जिसपर से संवत् १७८० में हमारी क. प्रति तैयार हुई। दूसरी प्रति में परमात्मप्रकाश की भाषा व छन्द के साम्य पर से ग्रन्थ के कर्ता का नाम योगीन्द्रदेव जुड़ गया था। इसमें दोहों की संख्या २२४ थी। इसे हम यो. कहेंगे। इसी पर से हमारी अ. प्रति तैयार हुई होगी। हम कह चुके हैं कि अ. प्रति के पाठ क से बहुत कुछ मिलते हैं अतएव इसका ह. से भी कुछ सम्बन्ध ज्ञात होता है। तीसरी प्रति में दोहों की संख्या २२२ या २२४ थी किन्तु कर्ता का नाम कोई भी नहीं पाया जाता था इसे हम वि. प्रति कहेंगे। इस पर से हमारी पांच प्रतियां (अ, प, द, प २ और म २) तैयार हुई प्रतीत होती हैं। प. प्रति गुजरात में मल्लिभूषण के शिष्य लक्ष्मण ने सं. १५५५ में लिखाई। आगे चलकर ये ही लक्ष्मण लक्ष्मीचन्द्रके नाम से मल्लिभूषण के उत्तराधिकारी

हुए। म. प्रति के अनुसार उन्होंने इस ग्रंथ की पत्रिका बनाई जो प. प्रति पर का टिप्पण ही ज्ञात होता है।

हमारा अनुमान है कि म. प्रति वाले तीन अधिक दोहे भी लक्ष्मीचन्द्रजी के बनाये हुए हैं। इस प्रकार उनकी तैयार की हुई (ल.) प्रति में २२७ दोहे होगये, जिस पर से २२७ दोहों वाली हमारी तीन प्रतियां [म २, प ३, प ४] तैयार हुईं। म. प्रति में तीन अधिक दोहे हैं, योगीन्द्रदेव मूल ग्रन्थकार कहे गये हैं तथा २१९ वां दोहा नहीं है। अतः इसका सम्बन्ध ल. अ. और अ. तीन प्रतियों से था। इस परम्परा को हम वृक्ष द्वारा और भी स्पष्टता से व्यक्त कर सकते हैं। जिन प्रतियों के नाम के साथ * यह चिन्ह है वे अबतक मिली नहीं हैं।

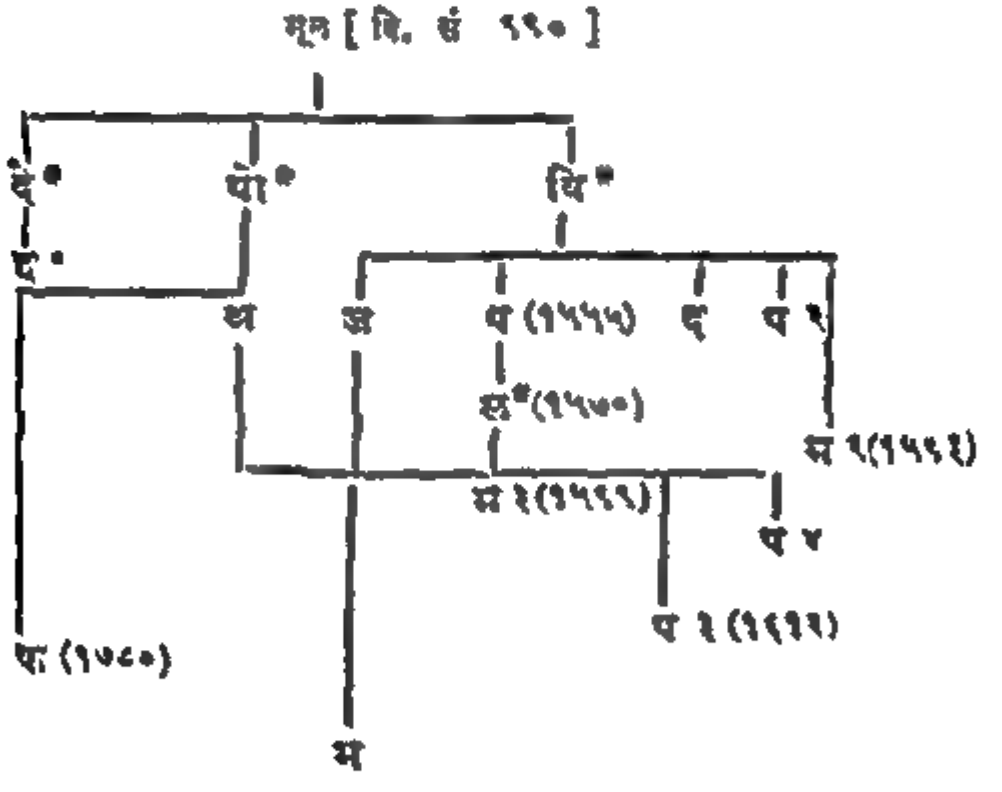

एक प्रश्न और है जिस पर भी यहां कुछ विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। दोहा नं. २२२ में जो कुछ कहा गया है उससे ज्ञात होता है कि उसके ऊपर के दोहों की संख्या मूलतः २२० थी। यद्यपि अ. प्रति में ' विसुत्तरइं ' की जगह ' वावीसुत्तरइं ' पाठ है पर वह स्पष्टतः कल्पित है। अब प्रश्न यह है कि वह कौन सा दोहा है जो मूल में नहीं था तथा जिसके कारण हमारे दोहों की संख्या २२० की जगह २२१ होगई है। जैसा ऊपर कह आये हैं, ज. और म. प्रतियों में दोहा नं. २१९ नहीं है। क्या वही दोहा पीछे का जोड़ा हुआ है ? वह दोहा इतना सुन्दर तथा ग्रंथकार की शैली के इतना अनुकूल है कि उसे प्रक्षिप्त मानने को जी नहीं चाहता यद्यपि दोहा नं. २२१ की प्रथम पंक्ति प्रायः वही है। ये यह भी संभव जान पड़ता है कि वह प्रक्षिप्त हो। इसका यथार्थ निर्णय कर निकालना बड़ा कठिन है और इसकी कोई बड़ी आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती। भर्तृहरि आदि कृत शतकों में प्रायः सौ से अधिक ही दोहे पाये जाते हैं।

४ भाषा और व्याकरण.

प्रस्तुत ग्रन्थ धार्मिक उपदेश तथा सूक्ति की दृष्टि से तो सुन्दर है ही पर उसका और भी विशेष महत्व उसकी भाषा में है। जैन भंडारों की सूचियों में इस भाषा के ग्रन्थ प्रायः ' मागधी भाषा ' के नाम से दर्ज किए हुए मिलते हैं किन्तु यह भाषा न तो मागधी है और न अन्य शौरसेनी आदि प्राचीन प्राकृत। किन्तु इन प्राकृतों ने प्रचलित देशी भाषाओं के पूर्व जो रूप धारण किया था वही इन ग्रन्थों में पाया जाता है। यह उनका विकसित या अपभ्रष्ट रूप है और इसी से इस भाषा का नाम अपभ्रंश भी पड़ा। प्राकृत व अपभ्रंश भाषायें समय समय पर जनसाधारण की भाषायें रही हैं और इसीलिये वे अपने अपने समय में संस्कृत से भी अधिक मधुर और प्रिय गिनी जाती थीं। कर्पूरमञ्जरी के कर्ता राजशेखर

को संस्कृत और प्राकृत की रचना के माधुर्य में उतना ही अन्तर दिख
जितना पुरुषों की कर्कशता और स्त्रियों की सुकुमारता में। उन्होंने कहा

> परुसा सक्कअबंधा पाउअबंधो वि होइ सुउमारो।
> पुरुसमहिलाणं जेत्तिअमिहंतरं तेत्तिअमिमाणम्॥
>
> [कर्पूर- १,

विद्यापति ठक्कुर को देसी अर्थात् अपभ्रंश भाषा माधुर्य में
व प्राकृत दोनों से बढ़ी चढ़ी दिखने लगी थी। उन्होंने अपनी 'कीर्ति
में कहा है—

> सक्कअवाणी बहुअ न भावइ
> पाउअ रस को मम्म न पावइ।
> देसिलवयना सब जन मिट्ठा
> तें तैसन जम्पओ अवहट्ठा॥

१०. वीं ११ वीं शताब्दि के लगभग यही भाषा समस्त
भारत में प्रचलित थी किन्तु देश भेद के अनुसार उसमें भेद थे।
ग्रन्थ मालवा प्रान्त में लिखा गया है अतएव इसमें पश्चिम देश की अ
भाषा पाई जाती है जिसका व्याकरण हेमचन्द्राचार्य ने अपनी प्राकृत व्या
रण में अच्छी तरह, खूब उदाहरणों सहित, दिया है। हमने 'भविसय
चरिउ' की भूमिका में इस भाषा के व्याकरण का विस्तार परिचय
है, किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ के पठन पाठन की सुविधा के लिये इसी ग्रन्थ
कुछ व्याकरण यहां भी दिया जाता है।

हिन्दी भाषा के साहित्य के इतिहास में इस भाषा के प्रयोग
बड़ा स्थान है यह प्रमाण करने के लिये हिन्दी साहित्य के तीन प्राचीन
-पृथ्वीराजरासो, बीसलदेवरासो और कीर्तिलता- से इनकी कुछ
से यहां तुलना की जाती है—

१. कीर्तिलता में मैथिल देश का अपभ्रंश है जो मागधी प्राकृत से निकला हुआ है अत: उसमें ल, श और ष, वर्ण तथा त्र, द्र आदि संयुक्ताक्षर पाये जाते हैं। सावयधम्म का अपभ्रंश महाराष्ट्री प्राकृत का है अत: उसमें इन वर्णों का अभाव है।

२. कीर्तिलता में शब्दों के बीच में आये हुए अल्पप्राण वर्णों–क, ग, च, ज आदि– का बहुधा लोप नहीं हुआ। सावयधम्म में अधिकतर हुआ है और उनके स्थान पर कहीं कहीं य श्रुति पाई जाती है।

३. कीर्तिलता में परसर्गों का बहुत सूक्ष्म प्रादुर्भाव हुआ दिखाई देता है और प्राकृत विभक्तियां प्राय उड गई हैं। बीसलदेवरासो व पृथ्वीराजरासो में कहीं कहीं परसर्ग और कहीं कहीं संयोगात्मक विभक्तिरूप, प्राय: दोनों अवस्थायें पाई जाती हैं। सावयधम्म में विभक्तियां कायम हैं यद्यपि उनकी जड़ उखड़ चली है। किन्तु परसर्ग का विकास केवल षष्ठी के साथ 'तण', व सप्तमी के बोध के लिये 'मज्झि' में कुछ २ दिखाई देता है।

४. उक्त तीनों ग्रन्थों में मुसलमानी भाषा के संसर्ग का प्रभाव है जैसा कि चन्द बरदाई ने स्पष्टरूप से स्वीकार किया है—

'षट् भाषा पुराणं च कुरानं कथितं मया।'

प्रस्तुत ग्रन्थ में मुसलमानी संसर्ग की गंध तक नहीं है। उसमें पुराण खूब है कुरान बिलकुल नहीं।

अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थ का अनुवाद करने में मुझे एक और बात का अनुभव हुआ जिसे यहां प्रकट कर देना उचित जान पड़ता है। संस्कृत के अनेक क्रियापद ऐसे हैं जो अपभ्रंश में पाये जाते हैं और ब्रजभाषा आदि पुरानी हिन्दी में भी बहुत कुछ प्रचलित थे किन्तु जो प्रचलित खड़ी बोली में से लुप्त होगये हैं। उनका अर्थ व्यक्त करने के लिये अब हमें उनके भूतकालिक कृदन्त व विशेषण या संज्ञायें बनाकर 'होना' व 'करना' क्रिया के साथ उनका उपयोग करना पड़ता है। उदाहरणार्थ—

संस्कृत	अपभ्रंश	पुरानी हिन्दी	प्रचलित रूप
नमति	णमइ	नमता है	नमन करता है
नश्यति	णासइ	नसता है	नष्ट होता है
प्रकाशते	पयासइ	प्रकाशता है	प्रकाशित होता है
मलिनायते	मइलेइ	मैलता है	मैला होता है
भक्षति	भक्खइ	भखता है	भक्षण करता है
धारयति	धारइ	धारता है	धारण करता है
प्रकटयति	पयडइ	प्रकटता है	प्रकट होता है।

ऐसे उदाहरण अनन्त हैं। यह मुझे भाषा में उन्नति की जगह अवनति का लक्षण दिखता है। क्रियाओं का क्षेत्र घटना नहीं बढ़ना चाहिये था। मेरी समझ में ऐसे क्रियापदों का हिन्दी में प्रयोग प्रारंभना चाहिये।

व्याकरण

१. सावयधम्म की अपभ्रंश भाषा में देवनागरी वर्णमाला के स्वरों में ऋ, ऐ व औ तथा व्यञ्जनों में ङ, ञ, श और ष को छोड़ कर शेष सब वर्ण पाये जाते हैं। न की स्थिति कुछ अनिश्चित सी दिखती है। अधिकतः उसके स्थान पर ण ही मिलता है। प्रस्तुत संस्करण में सर्वत्र ण ही रखा गया है।

उपर्युक्त वर्णों के स्थान में निम्न लिखित आदेश होते हैं।

ऋ के स्थान में अ, इ उ या रि। यथा, कय–कृत, घय–घृत, अमिय–अमृत, किविण–कृपण, घिय–घृत, मुअ–मृत, रिसि–ऋषि इत्यादि.

ऐ के स्थान में इ, यथा, विआवच्च–वैयावृत्त.

औ के स्थान में ओ या अउ। यथा, ओसह–औषध, पोर–पौर, मउण–मौन।

सम्प्रदान	हु	करयहु, गोमहु, मित्तहु.	हं	घमई, बंगई, मीई.
	हि	मुणिहि.		
अपादान	हु	कामहु.	हं	वंसुवाहं.
सम्बन्ध	हु	जूयहु, तिमिरहु	हं	लोगहं, बमयाई,
	हि, हि	सुरिहि, समिमहि, गंगहे.		कमहं, गंगाहं.
अधिकरण	इ	जंगि, मणुयमणे, अंधारइं,	इं	सरयाहं, गुहई.
		सोइ, घरि.		
सम्बोधन	अ	जिय, वड, णिम्म.		

आकारान्त व ईकारान्त स्त्रीलिंग शब्द बहुधा ह्रस्वान्त कर दिये जाते हैं, यथा, दय–दया, कह–कथा, वेयण–वेदना, भेरि–भेरी.

> किन्तु वेसा, चोरी इत्यादि भी पाये जाते हैं। कर्ता व कर्म कारक में ये प्रकृतरूप ही रहते हैं। शेष कारकों में पुलिंग से कोई बड़ी विशेषता नहीं पाई जाती।

नपुंसक लिंग का लोप सा होता हुआ दिखता है। शेष कारकों में तो इनका कोई विशेष चिह्न दिखाई नहीं पड़ता पर कहीं कहीं कर्ता बहुवचन में ये पहिचान पड़ते हैं, यथा, वराणइं, सिरखातयई.

३. सर्वनाम

कर्ता	हउ (अहम्, मैं हूं), कोइ, सोइ, सो, ज तं (नपुं) एहु, एउ, एउ
कर्म	जं, तं.
करण	पइं (त्वया, तूने), जेण, तेण.
सम्प्रदान	पइं (तुभ्यम्, तुझको), तहु.
सम्बन्ध	जसु, तासु, ताहं.

४. संख्यावाचक

संख्यावाचक	पूरणार्थक
१ एक्क	पढमउ, पहिलउ
२ दुण्णि, बिण्णि	बीयउ, बिइउ.
३ तिण्णि	तिज्जउ
४ चयारि	चउत्थु
५ पंच	पंचमु
६ छह	छट्ठउ
७ सत्त	सत्तमु
८ अट्ठ	अट्ठमु
९ णव	नवमउ
१० दस	दसमउ
११ एयारह	एयारहमउ
१२ बारह	

५. क्रियापद

क्रियाओं में परस्मैपद आत्मनेपद व भ्वादि अदादि का कोई भेद नहीं रहा। द्विवचन बहुवचन में गर्भित हो गया है।

वर्तमानकाल

	एकवचन		बहुवचन	
	प्रत्यय	उदाहरण	प्रत्यय	उदाहरण
उत्तम पु.	मि, उं	अच्छमि, करउं.	...	...
मध्यम पु.	हि, सि	अहिलसहि, करहि, जाहहि, होसि.	...	...
अन्य पु.	इ	होइ, चिट्ठइ, धरइ, करइ, वंदइ, पालइ, पियइ, हणइ.	अंति, अइं	वसंति, विलसंति, हुंति, हवंति लिंति, भणंति, उप्पज्जइं.

भूतकालिक क्रिया का कार्य प्रायः भूतकालिक कृदन्त से निकाला जाता है। क्रिया का उदाहरण केवल एक आया है, आसि- आसीत् ।

भविष्यत्काल की क्रियाओं के उदाहरण भी बहुत थोड़े हैं, जाहि- जासहि (तू जायगा), फलहि- फलिस्सन्ति (फलेगा) करिस्सहि (करेंगे), होसि- भविस्सहि.

आदेश सूचक मध्यम पु हि देहि, लेहि, पलाइ, लायहि
हु रक्खहु
इ करि, छंडि, पालहि, मुणि, मग्गि, धरि,
उ चिन्तु
अन्य पु उ वच्छउ, जाउ, जाउ

विधिसूचक- करेइ, हवेइ

कर्मणि प्रयोग- दिज्जइ, सुणिज्जइ, लहिज्जइ, रक्खिज्जइ

प्रेरणार्थक- कारयइ, कहावइ.

वर्तमानकालिक कृदन्त-अन्त- करन्त, लिन्त, करंत,अच्छन्त इत्यादि

भूतकालिक कृदन्त- अ, इअ, इय- हुअ, गुण, गलिअ, भणिअ, कहिय, छुडिय, पणासिय ।

पूर्वकालिक अव्यय-एप्पिणु- लएप्पिणु (ग्रहण कर), इय-रुंधिय,गणिय, मिलायिय, इवि- मुरिवि, करेवि, मुंजेवि, विहरेवि.

क्रियार्थ क्रिया-(तुमुन्) इवि-कहिदेवि ण सक्कइ,कहावेतुं ण सक्कइ।

६. अव्यय

समयसूचक-अज्जु, कहिं, जाम, ताम।

स्थानसूचक- इत्थु, जहिं, कहिंवि, जहिं-तहिं ।

प्रकार सूचक- जह-तह, जेम, तेम।

अन्य- न, णउ, ण हु, किम, जं, जि, किलावि, अहवा, मुणहि।

सावयधम्मदोहा

ॐ

णमक्कारेप्पिणु पंचगुरु दूरिदलियदुहकम्मु ।
संखेवें पयडक्खरहिं अक्खमि सावयधम्मु ॥ १ ॥

दुल्लहु लहियउ होउ जगि सुयणु पयासिउ जेण ।
अमिउ पिएँ पासरु वमिणें जिम मग्गउं फणेण ॥ २ ॥

जिहं सामिलेहिं सायरंगयहिं दुलहउं जूपहुं रंधु ।
तिहं जीवहं भवजलगयेहं मणुयत्तेंणि संबंधु ॥ ३ ॥

सुहु सारउ मणुयत्तणहं तं सुहु धम्मायत्तु ।
धम्मु वि रे जिय तं करेहि जं अरहंतें वुत्तु ॥ ४ ॥

अरहंतु वि दोसहिं रहिउ जसु गुणु केवलणाणु ।
णाणें भुणियपयत्थयहं वयणु वि तासु पमाणु ॥ ५ ॥

---

१ द. अकिणय. २ क. असदं, ज. द. सर्वादि. ३ ... मरगप. ४ ज. अड. ५ क. ज. द. वाविमा. ६ अ. सावं... ७ अ. दुलहउ. ८ क. जुवहं, द. जुपहिं. ९ ज. लह १० ... °गर्यहि. ११ क. मणुयत्तणु १२ अ. द. करि. १३ ज. वारि... १४ अ. द. अरहंतें. १५ क. द. मासु वि. १६ अ. ज. णाणु... १७ क. द. तस्स.

६. यह जिनवर का वचन गुरु के उपदेश से प्रकट
गुरु होता है। अंधकार में बिना दीपक के क्या कोई कुछ पहिचान सकता है?

७. जिस सूरि में संयम, शील, शौच और तप है वही
गुरु के गुण गुरु है। दाह, छेद और कष-घात के योग्य ही उत्तम कंचन होता है।

८. गुरु के उपदिष्ट मार्ग से नर शिवपुर को जाते हैं।
गुरूपदेश उसके बिना वे व्याघ्र, वनचर और चोरों के पिंड में पड़ जाते हैं।

९. यह श्रावक धर्म, हे जीव, ग्यारह प्रकारका कहा
श्रावक धर्म गया है। शक्त्यनुसार उसका परिपालन करने वालों का मनुष्य-जन्म सफल है।

१०. जिसके पंच उदुम्बर से निवृत्ति है, व्यसन एक
दर्शन भी नहीं है तथा जिसकी मति सम्यक्त्व द्वारा सुविशुद्ध है वह प्रथम श्रावक है।

११. जो पांच अणुव्रतों को धारण करता है और जिस
व्रत के तीन निर्मल गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत हैं उसे मनमें दूसरा [श्रावक] मानो।

१२. जो पूर्वाचार्यों के क्रमानुसार बत्तीस दोषों से रहित
सामायिक होकर तीनों संध्याओं में जिनेन्द्र की वन्दना करता है वह नियम से तीसरा [श्रावक] है।

तं पायडइ जिणवरवयणु गुरुउवएसें होइ ।
अंधारइं विणु दीवडइं अहव कि पिच्छइ कोइ ॥ ६ ॥

संजमु सीलु सउच्चु तउ जसु सूरिहि गुरु सोइ ।
दाहछेयकसघायखमु उत्तमु कंचणु होइ ॥ ७ ॥

भग्गइं गुरुउवएसियइं णर मिच्छत्तणि जंति ।
तं विणु मग्गहं वणयरहं चोरहं पिंडि णिवडंति ॥ ८ ॥

एयारहविहु तं कहिउ रे जिय सावयधम्मु ।
सत्तिए परिपालंतयहं सहलउ मणुसजम्मु ॥ ९ ॥

पंचुंबरहं णिवित्ति जसुं मेलणु ण एक्कु वि होइ ।
सम्मत्तें सुविसुद्धमइं पढमउ सावउ सोइ ॥ १० ॥

पंचाणुव्वय जो धरइ णिम्मल गुणवय तिण्णि ।
सिक्खावयइं चयारि जसु सो बीयउ भणि भणिउ ॥ ११ ॥

सउअद्धहं दोसहं रहिउ पुव्वायरियकमेण ।
जिणु वंदइ संझहं तिहि वि सो तिज्जउ णियमेण ॥ १२ ॥

---

१ अ ब द उवएसें. २ द सूरिहम. ३ अ द दि. ४ ब द मग. ५ ब छट्ठउ पाठइ मूलगुण ६ अ णियमु ७ अ प आ ण्णरारिणिमु. ८ अ अमु ९. द पव गुण
१० द णियमणिण

६. गुरु — यह जिनवर का वचन गुरु के उपदेश से प्रकट होता है। अंधकार में बिना दीपक के क्या कोई कुछ पहिचान सकता है?

७. गुरु के गुण — जिस सूरि में संयम, शील, शौच और तप है वही गुरु है। दाह, छेद और कष-घात के योग्य ही उत्तम कंचन होता है।

८. गुरूपदेश — गुरु के उपदिष्ट मार्ग से नर शिवपुर को जाते हैं। उसके बिना वे व्याघ्र, वनचर और चोरों के पेट में पड़ जाते हैं।

९. श्रावक धर्म — यह श्रावक धर्म, हे जीव, ग्यारह प्रकार का कहा गया है। शास्त्रानुसार उसका परिपालन करने वालों का मनुष्य-जन्म सफल है।

१०. दर्शन — जिसके पंच उदुम्बर से निवृत्ति है, व्यसन एक भी नहीं है तथा जिसकी मति सम्यक्त्व द्वारा सुविशुद्ध है वह प्रथम श्रावक है।

११. व्रत — जो पांच अणुव्रतों को धारण करता है और जिस के तीन निर्मल गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत हैं उसे मनमें दूसरा [श्रावक] मानो।

१२. सामायिक — जो पूर्वाचार्यों के क्रमानुसार बत्तीस दोषों से रहित होकर तीनों संध्याओं में जिनदेव की वन्दना करता है वह नियम से तीसरा [श्रावक] है।

तं पायइ ि
अंधारइं निप
संजमु सीलु
दाइछेयकस
मग्गइं गुरुव
तं विणु पा
एयारहनिङ्ग
गन्तिण परि
पंचुंबरइं वि
गेम्मणें गु
पंचाणुव्वय
सिक्खावय
चउग्गइं दे
जिणु वंदइ

१ (
४ अ. द. थो
७ अ. द. अ
१० द जिणव

उत्तमउत्तिमनुरामिहिं जो पालइ ठरतानु ।
सो चउत्थु सावउ भणिउ दुक्कियकम्मविपानु ॥ १३ ॥
पंचमु जमु कचासणइं हरियइं णाहि पत्तिचि ।
मणवयकायहिं छट्ठयइं दिवसइं णारिणिवित्ति ॥ १४ ॥
बंभयारि सत्तमु भणिउ अट्ठमु चयारंभु ।
णवमारिगणहु आलि जिय णवमउ वज्जियगंथु ॥ १५ ॥
अणुमइ देइ ण पुच्छियउ दसमउ जिणउरद्दु ।
एयारहमउ वं दुविहु वे वि भुंजइ उद्दिट्ठु ॥ १६ ॥
एयरत्थु पहिलउं विदिउ कयकोवीणपरिग्गि ।
कच्चरिलोयणिहियचिहुर सइं पुणु भोजणविहि ॥ १७ ॥
ए ठाणइं एयारसइं सम्मत्तें मुक्काइं ।
हुंति ण पउमइं सरवरहं विणु पाणिय सुक्काइं ॥ १८ ॥
अत्तागमतच्चाइयहं जं णिम्मलु सद्दहाणु ।
संकाइयदोसहं रहिउ त सम्मत्तु वियाणु ॥ १९ ॥

१ अ. द. °डंमु. २ अ. णु. ३ द णउ. ४ द. पद्धर.
५ अ. द. दयाहंरि. ६ क. द. प. जिणउ मरतरु

संकाइय अट्ठ मय परिहरि मूढा तिण्णि ।
जे छह कहिय अणायतण दंसणमल अवगण्णि ॥ २०

सुणि दंसणुं जिय जेण विणु सावयगुणु ण हुं होइ ।
जह सामग्गिविवज्जियहं सिज्झइ कज्जु ण कोइ ॥ २१ ॥

मज्जु मंसु महु परिहरहि करि पंचुंबर दूरि ।
आयेंहं अंतरि अट्ठंहं मि तस उप्पज्जंइं भूरि ॥ २२ ॥

महु आसायउं थोडउ वि णासइ पुण्णु बहुत्तु ।
वइसाणरहं तिडिक्कडउ काणणु डहइ महंतु ॥ २३ ॥

अँण्णुवइट्ठइं मण्णियइं महु परिहरियउ होइ ।
जं कीरइ तं कारियइ एहु अहाणउ लोइ ॥ २४ ॥

सेंव्वइं कुसुमेंहं छंडियइं केरि पंचुंबरचाउ ।
हुंति विमुक्कइं मंडणइं जइ मुक्कउ अणुराउ ॥ २५ ॥

१ अ. क. प. परिहर. २ ज. दंसणि; अ. क. द. दंस
३ अ. क. वि. ४ द. मायहिं. ५ अ. क. अट्ठमि हि. ६ अ.
द. उप्पज्जहिं. ७ अ. क. आसाइइ. ८ अ. क. थोवड वि.
द. तिडिकउ वि. १० अ. द. अणु उवइट्ठइं; प. अणउवइ
११ अ. क. ज. द. सग्गइं. १२ द. कुसुमिय. १३ अ. क. ज.
पंचुवरपरिचाउ.

२०. शंकादिक आठ (दोष), आठ मद और तीन मूढ़ता
दोष, मद, मूढ़ता का परिहार करो। जो छह अनायतन कहे गये हैं
और अनायतन उन्हें (सम्यग) दर्शन के मैल जानो।

२१. हे जीव, (सम्यग) दर्शन को सुनो जिसके बिना
सम्यग्दर्शन श्रावक का गुण नहीं होता। जैसे सामग्री से विव-
र्जित मनुष्य का कोई भी कार्य नहीं सधता।

२२. मद्य, मांस, मधु का परिहार करो, पंच उदुम्बर
अष्टमूलगुण दूर करो। इन आठों के अन्दर मूल गुण (जीव)
उत्पन्न होते हैं।

२३. मधु थोड़ासा भी खाया हुआ बहुतसे पुण्य का
मधु नाश कर देता है। अग्नि का छोटासा तिलगा भी
बड़े भारी वन को जला देता है।

२४. दूसरों को उपदेश देने व स्वयं मानने से मधु का
मधुत्याग परिहार होता है। जैसा (स्वयं) करता है
वही (दूसरों से) कराता है यह मर्यादा लोक में है

२५. सब फूलों को छोड़कर पंच उदुम्बर का त्याग क
उदुम्बर त्याग यदि अनुराग छूट गया तो अतिचार
छूट जाते हैं।

अट्ठेइं पालइ मूलगुण पियइ जिं गालिउ णीरु ।
अह चित्तें सुविसुद्धइण मुचइ सव्वुं सरीरु ॥ २६

जेण अगालिउ जलु पियउ जाणिज्जइ ण पमाणु ।
जो णं पियइ अगालियउ सो धीवरहं पहाणु ॥

आमिससरिसउ भासियउ सो अंधउ जो खाइ ।
दोहि मुहुत्तहं उप्परहिं लोणिउ सम्मुच्छाइ ॥ २

संगें मज्जामिसरयहं मइलिज्जइ सम्मत्तु ।
अंजणगिरिसंगें ससिहिं किरणइं काला हुंति ॥

अच्छउ भोयणु ताहं घरि सिद्धहं वयणु ण जुत्तु ।
ताहं समउ जें कारणइं मइलिज्जइ सम्मत्तु ॥ ३०

तामच्छउ वेढमंडयहं पक्कासणलित्ताहं ।
हुंति ण जुग्गइं सावयहं वहं भोयणु पत्ताहं ॥

चम्मच्छइं पीयइ जलइं तामच्छउ दूरेण ।
दंसणसुद्धि ण होइ तसु खद्धइ घियतिल्लेण ॥ ३

हड्डिरामिसचम्मट्ठिसुर पच्चक्खउ बहुजंतु ।
अंतराय पालेउं भविय दंसणसुद्धिणिमित्तुं ॥ ३२

---

१ अ. अट्ठउ. २ ज. द जु. ३ क. द. सग
द. सं. ५ क. मयलिज्जइ. ६ ज ताहं तंडयहं.
मंडयहं. ७ अ. क. होंति. ८ ज. द. मयलिज्जउ. ९ ज
१० क. °मइंतु.

२६. चित्तशुद्धि आठों मूलगुणों का पालन करे और गाला (छाना) हुआ जल पिये। चित्त के विशुद्ध होने से सब शरीर शुद्ध हो जाता है।

२७. बिना छना पानी जिसने बिना छना पानी पिया उसने प्रमाण नहीं जाना। जो बिना छना पीता है वह धीवरों में प्रधान है।

२८. मक्खन दो मुहूर्त के ऊपर लोनी (मक्खन) में सम्मूर्छन जीव उत्पन्न हो जाते हैं। (इसलिये) वह मांस सदृश कहा गया है। वह अंधा है जो खाय।

२९. मद्यमांसभोजियों का संग मद्यमांस में रत रहने वालों के संग से सम्यक्त्व मैला हो जाता है। अंजनगिरि के संग से चन्द्र की किरणें भी काली हो जाती हैं।

३०. मद्यमांसभोजियों का परिहार उनके घर में भोजन करना तो दूर रहा शिष्ट लोगों को उनसे बात भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि उनके संग से सम्यक्त्व मैला हो जाता है।

३१. पक्व भोजन करने वाले तप से मंडित (मुनि) तो दूर रहें उनका भोजन पात्र श्रावकों के भी योग्य नहीं है।

३२. चर्माच्छादित जल, घृत, तैल जो चर्माच्छादित जल पीता है उसकी तो दूर की बात है, दर्शन शुद्धि तो उसके भी नहीं होती जो (ऐसे) घी-तेल सहित खाता है।

३३. अन्तराय योग्य वस्तुएं रुधिर, मांस, चर्म, अस्थि और मूत्र ये प्रत्यक्ष में ही बहुत जंतुपूर्ण हैं। हे भव्य दर्शनशुद्धि के [illegible] इनका अन्तराय पालो।

मूल उगाली-भिंग-कम्गुण-तुंबड-कंद कलिंगु ।
घण फणुब्भवगदहि मज्जगिं दंसणभंगु ॥ ३४ ॥

अण्णु वि गुललिउ फुल्लियउ सायइं घल्लियउ जं जि ।
दोदिणवासियउ दहिमहिउ ण हु भुंजिज्जइ तं जि ॥ ३५ ॥

बेदलमीसिउ दहिमहिउ जुत्तु ण सावय होइ ।
तहइं दंसणभंगु पर सम्मत्तु वि मइलेइ ॥ ३६ ॥

तंबोलोसहु जलु मुइवि जें अत्थवियइं सूरि ।
भोग्गासणु फलु अहिलसिउं तें किउ दंसणु दूरि ॥ ३७ ॥

जूएं धणहु ण हाणि पर वयइं वि होइ विणासु ।
लग्गउ कट्ठु ण डहइ पर इयरइं डहइ हुयासु ॥ ३८ ॥

जइ देसवउ छड्डियउं ता विय छड्डिउ जूउं
अह अग्गिहिं उल्हावियइं अवसें ण उट्ठइ धूउ ॥ ३९ ॥

दय-जि मूलु धम्मंघिवहु सो उप्पाडिउ जेण ।
दलफलकुसुमहं कवण कह आमिसु भक्खिउ जेण ॥ ४० ॥

१ अ. क विस. २ क मक्कणु ण ३ ज. दंसणि. ४ अ. ज. द. अणु. ५ ज. द सुललिउ. ६ अ. क. सायइं. ७ द. दिणि. ८ ज. द. जो. ९ अ भुंगासणु; क. द. पुग्गासणफल. १० ज. द. अहिलसइ. ११ अ जूवें. १२ अ क जइ छंडिउ वउ देसियउ. १३ क. ता छंडिउ तुहुं जूउ. १४ अ. क. अवसि.

३४. मूली, उनाली (?), बिम्ब (कमलतन्तु), लहसुन,
मूली आदि अभक्ष्य तुंबा, करट, कलिंग, सूरण व फूलस्थानों के भक्षण से दर्शन भङ्ग होता है।

३५. अन्य भी जिसमें जड़ें निकल आई हों, व फूल
अन्य अभक्ष्य आगये हों व जो स्वाद से चलित होगया हो, व दो दिन का बासा दही मही भी नहीं खाना चाहिये।

३६. द्विदलमिश्रित दही मही श्रावकों के योग्य नहीं
द्विदल होता। इसके खाने से दर्शन का भङ्ग और सम्यक्त्व मैला होता है।

३७. ताम्बूल, औषध और जल को छोड़कर, सूर्यास्त के
रात्रिभोजन पश्चात् जिसने भोजन या फलाहार की अभिलाषा की उसने दर्शन को दूर कर दिया।

३८. जुआ से धन ही की हानि नहीं होती पर मनों का
द्यूत भी विनाश होता है। अग्नि केवल जिस काठ में लगे उसे ही नहीं जलाती किन्तु दूसरों को भी जला देती है।

३९. यदि देवना तक छोड़ दिया तो, हे जीव, धन
द्यूतत्याग सचमुच छूटा। अग्नि के जलने शान्त कर देने पर अवश्य धुंआ नहीं उठता।

४०. दया ही धर्मद्रुम का मूल है। इसे जिसने उखाड़
दया डाला उसने मूल, फल, कुसुम और कौन कथा मांस भक्षण कर लिया।

४१. मृगमांस यदि छोड़ दिया तो, हे जीव, मांस
मांसत्याग छोड़ा। जैसे अपथ्य के निवारण से व्याधिवेदना का निवारण हो जाता है।

४२. बार बार लिख लिख कर इस सूत्र को सुनो।
मद्यदोष मद्य का यह दोष है कि मत्त (पुरुष) अपनी पुत्रि की भी अभिलाषा करने लगता है इससे उसका नरक में प्रवेश होता है।

४३. मद के छोड़ देने से मद्य भी छूट जाता है और
मद्यत्याग वेदना भी छूट जाती है, जिस प्रकार कि व्याधि के निवारण हो जाने से फिर भी वेदना नहीं रहती।

४४. धनिकों का धन वेश्या में लगता है। बंधु मित्र
वेश्यादोष सब छूट जाते हैं। वेश्या के घर प्रवेश करने वाला नर सब गुणों से मुक्त हो जाता है।

४५. कामकथा के परित्याग से, हे जीव, नारिका
वेश्यात्याग (वेश्या) का भी परित्याग हो जाता है। कंद के उपाट देने पर बेला के पत्र समाप्त हो जाते हैं (स्वयं सूख जाते हैं)।

४६. शिकारी बड़ा निर्दयी है जो भय से भागे हुए, जीभ
आखेटदोष में तृण दबाये हुए (मृगों) का वध करता है। इससे वह नरक को जाता है।

४७. यदि शिकार खेलना छोड़ दिया तो कुत्ता पिल्ली
आखेटत्याग आदि भी छूट गये। बीज में पानी, रोक कर देने से अंकुरलब्धि का अवरोध है।

चोरी चोर हणेइ पर बहुयकिलेसहं खाणि ।
देइ अणत्थु कुडुंबहे[1] मि गोत्तहं[2] जसघणहाणि ॥ ४८ ॥

मुक्कहं कूडतुलाइयहं चोरी मुक्की होइ ।
अह व वणिज्जइं छंडियइं[3] दाणु ण मग्गइ कोइ ॥ ४९ ॥

परतिय बहुबधण[4] ण परें अण्णु वि णरयणिसेणि[5] ।
विसकंदलि घारइ णं पर करइ वि पाणहं हाणि ॥ ५० ॥

जइ अहिलासु णिवारियउ ता वारिउ परयारु ।
अह णाइर्फे[6] जित्तएणं जितउ सयलु खंधारु ॥ ५१ ॥

वसणइं[7] तांवइं छंडि जिय[8] परिहरि[9] वसणासत्तें[10] ।
सुक्खेंहं[11] संसग्गें हरिय पेक्खह तरु डज्झंतें[12] ॥ ५२ ॥

मूलगुणा इय एत्तडइ[13] हियवइ थक्कइं[14] जासु ।
धम्मु अहिंसा देउ जिणु रिसि गुरु दंसणुं[15] तासु ॥ ५३ ॥

---

१ अ. द. कुडुंबहं. २ अ. क. गोत्तसु. ३ क. छंडियइं. ४ 'बहुबंधणणयर' भी पाठ आ सकता है । ५ क. णिरय. ६ ज. णि ७ अ. क. इक्कें तावइं जिणियइं. ८ ज. द. ताव छंडउ जिय. ९ अ. परिहर. १० अ. क. प. वसणासत्ति. ११ अ. क. सुक्खइं. १२ क. द. डज्झंति. १३ अ. द. इत्तडउ। क. उत्तडउ. १४ क. थक्कउ. १५ द. दंसण.

७८. आचार्यों के मत भाजी में प्राण प्रमाण कहा गया
प्राण की प्रमाणता है। इसे पाक अपाक का विवेक करके, विवेक
सहित [illegible] चाहिये।

७९. अनाज में अपाक पाक [illegible] और [illegible]
तीन पाक कहा गया है। [illegible] [illegible] पाक
कहा गया है।

८०. जिन [illegible] द्वारा उपदिष्ट तीनों प्रकार के पाकों
पाकग्रहण को जो ग्रहण करता है वह जीव कल्याण का लाभ
का फल करके गुणविकास का उपयोग करता है।

८१. [illegible] सहित गुणाग को यदि ग्रहण किया जाता है
गुणग्रहण तो उससे गुणयोग प्राप्त होता है। [illegible]
का फल छोड़ा हुआ अन्न भी व्यर्थ हो जाता है।

८२. गेहूं, चावल, जुवार व मिठाइयों के [illegible]
[illegible] के योग हैं। इसे [illegible] [illegible]
नाना प्रकार के फल आवें।

८३. आगम में [illegible] कहा है जिसके [illegible]
अग्रहण ग्रहीत नहीं है। और लिया हुआ प्राण निष्फल होता
की निष्फलता है, और [illegible] की तरह।

८४. जिसने [illegible] को ग्रहण किया उसने [illegible]
[illegible]। [illegible] लिये हुए [illegible]
[illegible] में आया है।

इक्कु वि तारइ भवजलहि चेहु दायार सुपत्तु ।
सुपरोहणु एक्कु वि बहुय दीसइ पारहु णिंतु ॥ ८५ ॥

दाणु कुपत्तहं दोसडइ बोल्लिज्जइ ण हु भंति ।
पत्थरु पत्थरणाव कहिं दीसइ उत्तारंति ॥ ८६ ॥

जइ गिहत्थु दाणेण विणु जगि पमणिज्जइ कोइ ।
ता गिहत्थु पंखि वि हवइ जं घरु ताह वि होइ ॥ ८७ ॥

धम्मु करउं जइ होइ धणु इहु दुव्वयणु म बोल्लि ।
हक्कारउ जमभडतणउ आवइ अज्जु कि कल्लि ॥ ८८ ॥

काइं बहुत्तइं संपयइं जइ किविणहं घरि होइ ।
उवहिणीरु खारें भरिउ पाणिउ पियइ ण कोइ ॥ ८९ ॥

पत्तहं दिण्णउ थोवडेउ रे जिय होइ बहुत्तु ।
वडह बीउ धरणिहिं पडिउ वित्थरु लेइ महंतु ॥ ९० ॥

धम्मसरूवें परिणवइ धाउ वि पत्तहं दिण्णु ।
साइयजलु सिप्पिहिं गयउ मुत्तिउ होइ रयण्णु ॥ ९१ ॥

---

१ द. तारइ तीर. २ क. में यह दोहा नहीं है. ३ अ. ज. द इयहिं. ४ अ. क. करहुं. ५ अ. क. संपयइं. ६ ज. द. आ. ७ ज. द. सायरणीरु खारें भरिए. ८ अ. पियइ ९ अ. द. थोवडउ. १० ज. द. वित्थरिय. ११ अ. क. रक्खाई.

८५. एक ही सुपात्र अनेक दातारों को भवसमुद्र से पार देता है। अच्छी एक ही नौका बहुतों को पार लगाती देखी जाती है।
सुपात्रदान की महिमा

८६. कुपात्र का दान दोष पूर्ण कहा गया है इसमें भ्रान्ति नहीं। पत्थर की नाव पत्थर को पार उतारती कहाँ देखी गई है?
कुपात्रदान का दोष

८७. यदि दान के बिना भी जगत् में कोई गृहस्थ कहलाये तो पक्षी भी गृहस्थ होगया क्योंकि घर तो उसके भी होता है।
दान के बिना गृहस्थ नहीं

८८. 'यदि धन होजाय तो धर्म करूं' ऐसे दुर्वचन मत बोल। यमदूत का हरकारा आज आजाय कि कल।
मौत का अनिश्चय

८९. बहुत सम्पत्ति से भी क्या यदि वह कृपण के घर हुई। समुद्र का जल खार से भरा है। उसका पानी तक कोई नहीं पीता।
कृपण की सम्पत्ति

९०. हे जीव, पात्र को दिया हुआ थोड़ा भी बहुत होता है। वट का बीज भूमि में पड़कर भारी विस्तार ले लेता है।
पात्रदान थोड़ा भी बहुत है

९१. पात्रको दिया हुआ दान धर्म स्वरूप परिणमित होता है। स्वातिजल सीप में पड़कर रमणीय मोती बन जाता है।

जं दिज्जइ तं पावियइ एंउ ण वयणु विसुद्धु ।
गाइ पइण्णइ खडभुसइं किं ण पयच्छइ दुद्धु ॥ ९२ ॥

जो घरि हुंतइं धणकणइं मुणिहि कुभोयणु देइ ।
जम्मि जम्मि दालिद्दडउ पुट्ठि ण तहु छंडेइ ॥ ९३ ॥

काहिं भोयण सहुं भिट्टडी दिण्णु कुभोयणु जेण ।
हुंतइं भीयइं घरि पउर यविय बयुलइं तेण ॥ ९४ ॥

जं जिय दिज्जइ इत्थुभवि तं लब्भइ परलोइ ।
मूलें सिंचइ तरुवरहं फलु डालंहं पुणु होइ ॥ ९५ ॥

पत्तइं दाणइं दिण्णइण मिच्छादिट्ठि वि जंति ।
उत्तमाइं भोयावणिहिं इच्छिउ भोउ लहंति ॥ ९६ ॥

कम्मुं ण खेत्तिय सेव जहिं णउ वाणिज्जपयासु ।
घरि घरि दस कप्पयर जहिं ते पूरेंहिं अहिलासु ॥ ९७ ॥

किं किं देइ ण धम्मतरु दाणसलिलसिंचंतु ।
जइ मिच्छत्तहुयासणहु रक्खिज्जइ डज्झंतु ॥ ९८ ॥

---

१ अ. क. एहउ वयणु विरुद्धु. २ ज. पयणइं. ३ ज. द. सिहु. ४ अ. क. भेटडी. ५ क. डालहु ६ क. दिण्णइं दाणइण. ७ ज. °हिं. ८ अ. क. भोयवणि वि. ९ क. इच्छिय भोय. १० अ. क. कम्म. ११ क. पूरइं; ज. पूरिंहिं.

धम्मु करंतहं होइ धणु इत्थु ण कायउ भंति ।
जलु कड्ढंतहं कूवयहं अवसइं सिरउ घडंति ॥ ९९ ॥

धम्महु धणु परिहोइ थिरु विग्घइं विहडिवि जंति ।
अह सरवरु अविणइं रहिउ फुट्टिवि जाइ तडत्ति ॥ १०० ॥

धम्में सुहु पावेण दुहु एउ पसिद्धउ लोइ ।
तम्हा धम्मु समायरहि जें हियइच्छिउ होइ ॥ १०१ ॥

धम्में जाणहिं जंति णर पावें जाण वहंति ।
धरधर गेहोवरि चडहिं कूवखणये तलि जंति ॥ १०२ ॥

धम्में इक्कु वि पहु भरइ सहं मुक्खियउ अहम्मु ।
वड्ड पहुयहं छाया करइ तासु सहइ सइं घम्मु ॥ १०३ ॥

काइं बहुत्तइं जंपियइं जं अप्पहु पडिकूलु ।
काइं मि परहु ण तं करहि एहु जि धम्महु मूलु ॥ १०४ ॥

सत्थसएण वियाणियहं धम्मु ण चढइ मणे वि ।
दिणयरसउ जइ उग्गमइ घूयडु अंधउ तो वि ॥ १०५ ॥

---

१ अ. क. काइं म भंति; द काइं मणंति. २ ज. घडंति; द. घडुंति. ३ अ. क. परहोइ. ४ अ. अविणय. ५ अ. क. एहु. ६ क. धम्म समायरह जिह हियइच्छिय. ७ अ. क. द जाणहं; ८ द. ण. हुंति. ९ क. खणे. १० अ. क. द. पहुयइं. ११ ज. घुम्मु; १२ ज. °सयहिं. १३ द. चडइ. १४ अ. उग्गमहि. १५ अ. क. घूयउ.

९९. धर्म करने वालों के धन होता है इसमें भ्रान्ति
से धन प्राप्ति न करना चाहिये। कुए से जल काढ़ने वालों के
सिर पर अवश्य घड़ा होता है।

१००. धर्म से धन स्थिर होता है और विघ्न विघट
धर्म से धन जाते हैं। पार से रहित सरोवर नष्ट हो सूख
की स्थिरता जाता है।

१०१. 'धर्म से सुख, पाप से दुःख' यह लोक में प्रसिद्ध
धर्म से सुख है। इसलिये धर्म कर जिससे मनोवाञ्छित
प्राप्त हो।

१०२. धर्म से नर पालों द्वारा जाते हैं और पाप से पालों
र्म का उत्कर्ष, का पतन करते हैं। घर बनाने वाले घर के ऊपर
प का अपकर्ष चढ़ते हैं और कुआ खोदने वाले नीचे को जाते हैं।

१०३. धर्मी से एक ही पशुओं का भरण पोषण करता है
र्म की शक्ति और अधर्मी स्वयं भूखा रहता है। वट पशुओं पर
छाया करता है और ताड़ स्वयं घाम सहता है।

१०४. बहुत कहने से क्या, जो अपने प्रतिकूल हो उसे
धर्म का मूल कभी दूसरों के प्रति भी मत करो। यही धर्म का
मूल है।

१०५. सभी शास्त्रों को जान लेने से भी विपरीत ज्ञान वाले
विपरीत ज्ञानी के मन पर धर्म नहीं चढ़ता। यदि सौ सूर्य भी उग
आवें तो भी घुग्घू अंधा ही रहेगा।

पोट्टहं लग्गिवि पावमइ करइ परत्तहं दुक्खु ।
देउले लग्गिवि णिट्ठियइं किण्ण पलोट्टइ मुक्खु ॥ १०६ ॥

छुट्टइ सुविसुद्धिय होइ जिय तणुमणवयणसामग्गि ।
धम्मु विढप्पइ इंधियइं धणहं विलग्गउ अग्गि ॥ १०७ ॥

मुणि वयणइं झायहि मणइं जिणु भुवणत्तयबंधु ।
कायेंइं करि उववासु जिय जें तुट्टइ भवसंधु ॥ १०८ ॥

होइ वणिज्जु ण पोट्टलिहिं उववासहिं णउ धम्मु ।
एहु अयाणउ सो चवइ जसु कउ भारिउ कम्मु ॥ १०९ ॥

पोट्टलियइं मणिमोत्तियइं धणु किसियहिं ण माइ ।
थोरिहिं[14] भरिउ बलद्दडा तं णाहीं जं खाइ ॥ ११० ॥

उववासहु इक्कहु फलइं संबोहियपरिवारु ।
णायदत्तु दिवि देउ हुउ पुणरवि णायकुमारु ॥ १११ ॥

तें कज्जें जिय पइं भणिउ करि उववासब्भासु ।
जाम ण देहकुडिल्लियइं ढुक्कइ मरणहुयासु ॥ ११२ ॥

---

१ अ. देउलि. २ ज. लग्गवि. ३ अ. णीठियहिं. ४ [illegible] पइट्टइ. ५ अ. क. ज सुविसुद्धइ. ६ द. °वयणे समग्गि. ७ अ क. तितियइं. ८ ज. द. वयणि. ९ क. झाइय मणइ. १० अ कायइं. ११ ज. पोट्टिलिहिं. १२ ज. अयाणउ. १३ अ. किसयहिं १४ अ. क. थोरिय. १५ ज. पइं. १६ ज. उववासु सपासु.

१०६. पेट के लिये भी पापमति दूसरों को दुःख पहुंचाता है। देवल में लगी हुई गोलियों को मूर्ख क्यों नहीं पलोटता ?

पेट के लिये पाप

१०७. यदि, हे जीव, तन, मन और वचन की सामग्री विशुद्ध होय तो इतने से ही धर्म बढ़ता है। धन में आग लगने दे।

मन-वचन-काय की शुद्धि

१०८. त्रिभुवन-बन्धु जिन भगवान् का वचनों से कीर्तन कर, मन से ध्यान कर, और काय से उपवास कर, जिससे, हे जीव, भवसिंधु छुटे।

ध्यान, कीर्तन और उपवास

१०९. वाणिज्य पोटली से नहीं होता। उपवास से धर्म नहीं होता। यह महात्मा यह कहता है जिसने भारी (दुष्ट) कर्म किया है।

उपवास की वाणिज्य से उपमा

११०. मणि और मोतियों की पोटली में धन कितना है इसका मान नहीं रहता। धेल और बेरों का तो कोई गाने वाला भी नहीं है।

१११. एक ही उपवास के फल से परिवार का संबोधन करके नागदत्त स्वर्ग में देव हुआ और फिर नागकुमार।

उपवास-फल का उदाहरण

११२. इसीलिये, हे जीव, तुझसे कहता हूं कि उपवास का अभ्यास कर, जबतक कि देह रूपी कुंड में मरण की आग नहीं पड़ी।

उपवास का अभ्यास

धम्मु विसुद्धउ तं जि पर जं किज्जइ काएण ।
अहवा तं धणु उज्जलउ जं आवइ णाएण ॥ ११३ ॥

णिद्धणमणुयहं कट्ठडा संजमि उवणय दिंति ।
अह उत्तमपइ जोडिया जिय दोस वि गुण हुंति ॥ ११४ ॥

णियमविहूणहं णिद्धणी जीवइ णिप्फल होइ ।
अणवोल्लियेउ कि पाणियइ दम्मकलंतरु लोइ ॥ ११५ ॥

जो पयमाणु सो जि तणु किं किज्जइ इयरेण ।
तं णिरु जं जिणमुणि णवइ रेहइ भत्तिभरेण ॥ ११६ ॥

दाणचउक्कविहि जे करहिं ते जि सलक्खण हत्थ ।
जे जिणणिग्गंथहं अणुसरहिं पाय वि ते जि पसत्थ ॥११७॥

जे सुणहिं धम्मक्खराइं ते हउं मण्णमि कण्ण ।
जे जोयहिं जिणवरहं मुहु ते पर लोयण धण्ण ॥ ११८ ॥

अरहु वि जं अहिं उवयरइं तं उवयारहिं णिग्गु ।
इह विहिं जीवियआसडउ देहु म दिट्ठउं णिग्गु ॥ ११९ ॥

---

१ अ. क. [illegible]. २ अ [illegible] क. [illegible]. ३ अ. [illegible]. ४ क. [illegible]. ५ अ [illegible]. ६ अ [illegible] ७ अ अ [illegible] ८ अ क. [illegible] ९ अ [illegible] १० अ क. [illegible]. ११ अ [illegible] १२ [illegible] १३ [illegible]

११३. धर्म वही विशुद्ध है जो अपनी काय से कि
काय से धर्म, आवे, और धन वही उज्वल है जो न्याय
न्याय से धन आवे।

११४. निर्धन मनुष्य के कए संयम में उत्पत्ति देते हैं
निर्धनता उत्तम पद में ओछे हुए दोष भी गुण है
और संयम आते हैं।

११५. नियम-विहीन मनुष्य की निष्ठा निष्फल होती है।
नियम और बिना वेल्लाये क्या कोई लोक में दाम का टुकड़ा
निष्ठा भी पाता है!

११६. जो मन-भाजन हो वही मन है, अन्य फिर काम
सदा मन, का? वही सिर है जो जिनमुनि को नमस्कार करे
सदा भार क और भक्ति के भार से सुशोभित हो।

११७. जो दान और पूजाविधि करें वे ही सुलक्षण हाथ
भये हाथ, हैं। जो जिनतीर्थों का अनुसरण करें वे ही पांव
भये पाव प्रशंसनीय हैं।

११८. जो धार्मिक शब्दों को सुनते हैं उन्हीं को मैं कान
भये कान, मानता हूँ। जो जिनवर का मुख देखें वे ही परम
भये नेत्र लोचन धन्य हैं।

११९. और भी जो (मन) जैसा उपकार कर सके
... उससे वैसा उपकार कराओ। हे जीव, जीवन-
... काल देकर देह को निरर्थक मत करो।

धम्मु विसुद्धउ तं जि पर जं किज्जइ काएण ।
अहवा तं धणु उज्जलउ जं आवइ णाएण ॥ ११३ ॥

णिद्धणमणुयहं कट्ठडा संजमि उण्णय दिंति ।
अह उत्तमपइ जोडिया जिय दोस वि गुण हुंति ॥ ११४ ॥

णियमविहूणेंहं णिद्धणी जीवहं णिप्फलु होइ ।
अणबोल्लियंउ किं पावियइ दंम्मकलंतरु लोइ ॥ ११५ ॥

जो वयभायणु सो जि तणु किं किज्जइ इयरेण ।
तं सिरु जं जिणमुणि णवइ रेहइं भत्तिभरेण ॥ ११६ ॥

दाणच्चणविहि जे करहिं ते जि सलक्खण हत्थ ।
जे जिणतित्थंहं अणुसरहिं पाय वि ते जिं पसत्थ ॥११७॥

जे सुणंति धम्मक्खरइं ते हउं मण्णमि कण्ण ।
जे जोयहिं जिणवरह मुहु ते पर लोयण धण्ण ॥ ११८ ॥

अयरु वि जं जहिं उवयरइं तं उवयारेंदि तित्थु ।
लइ जियें जीवियलाहडउ देहु म लेहुँ णिरत्थु ॥ ११९ ॥

---

१ अ. फ संजमियउणय. २ अ °विहूणा, फ. विहूणी. ३ ज. बोल्लिउ. ४ क. दव्वफलंतरु. ५ ज जिं. ६ अ सोहइ. ७ अ. ज. °तित्थहिं. ८ अ. क ण ९ अ क °हिं, ज °इं. १० अ. य °हि. ११ ज. उवयारिहिं. १२ द जीविय जियलाहडउ. १३ प. करहु.

११३. धर्म वही विशुद्ध है जो अपनी काय से किया
न्याय से धर्म, जावे, और धन वही उज्ज्वल है जो न्याय से
न्याय से धन आवे।

११४. निर्धन मनुष्य के बड़े संयम में उत्पत्ति होते हैं।
निर्धन उत्तम पद में जोड़े हुए दोष और गुण हो
और संयम जाते हैं।

११५. नियम-विहीन मनुष्य की निद्रा निष्फल होती है।
नियम और बिना चेतावनी क्या कोई लोक में काम का फल
निद्रा और पाता है ?

११६. जो मन-भावन हो वही मन है, अन्य किस काम
सच्चा मन, का ? वही शिर है जो जिनमूर्ति को नमस्कार करे
सच्चा मस्तक और भक्ति के भार से सुशोभित हो।

११७. जो दान और पूजाविधि करते हैं वही सुलक्षण हाथ
सच्चे हाथ, हैं। जो जिनमन्दिरों का अनुसरण करें वे ही पांव
सच्चे पांव प्रशंसनीय हैं।

११८. जो धार्मिक शास्त्रों को सुनते हैं उन्हीं को मैं कान
सच्चे कान, मानता हूं। जो जिनवर का मुख देखें वे ही परम
सच्चे नेत्र नयन धन्य हैं।

११९. और भी जो (अंग) ऊपर उपकार कर सकें
अंगों से उपकार उनसे बिना उपकार कराये। हे जीव, अंतरंग-
[illegible] स्नेह से देह को निरर्थक मत करो।

घरु पुरु परियणु धणियणु बंधवसुतमहाइं ।
जीवें जंतें धम्मु पर अण्णु ण मग्गिउ जाइ ॥ १२० ॥

देहि दाणु चेउ किं पि करि मणं मोडहि णियमति ।
जं कड्डियइं पडोसयहं तं उव्वरइ ण भंति ॥ १२१ ॥

जइ जिण गुणाइं अहिलसहि छंडहि णियकसाय ।
जइ णिवेइं अणिवारियइं फलहिं कि अज्झवसाय ॥ १२२ ॥

कारिविदिउ मा लाहि जिण लाविउ एहु जि गमु ।
कलिभित्ति लग्गउ दल्लियउ णियलेहणयहु पमु ॥ १२३ ॥

जिणविंदिउ जिण संठाहि गणण [illegible] भरइ भवणु ।
मराइं भग्गु पडज्जकिंति पुर लिपइ पल्हुयणु ॥ १२४ ॥

पाविज्जिय पड पणि करहि रसाइंहु णियमग्गोइ ।
पाढइ लोइहु णिविंसु जि पुर धम्मइं णिव्वाउ ॥ १२५ ॥

करहु उप्पडि वइ म करि बाहण णिवाहि जेम ।
काऊसग्ग पडिमइ णिवाहि दीणि जेम ॥ १२६ ॥

[illegible] सुप्पहि, [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible]
[illegible]

१२०. घर, पुर, परिजन, धनिकों का धन, पुत्र, बांधव
जीव का सखा और सहायक ये आगे समय जीव के साथ नहीं
केवल धर्म जाते। धर्म ही एक साथ जाता है।

१२१. कुछ भी कर के थोड़ा दान दे। मन को निजशक्ति
दान और के अनुसार शोध। जो नहीं दिया उसकी समय
मनोशुद्धि यही उपकारी होगा इसमें भ्रान्ति नहीं।

१२२. हे जीव यदि तू सुख चाहता है तो विषय-कषाय
विषय-कषाय छोड़ दे। जिन्होंने विषयों का निवारण नहीं किया
का त्याग उनके क्या अध्यवसाय फलीभूत होते हैं?

१२३. हे जीव, स्पर्शेन्द्रिय का लालन मत कर। लालन
स्पर्शेन्द्रिय करने से यह शत्रु बन जाता है। हथिनी से छल
कर हाथी जंजीर और अंकुश के दुख में पड़ा है।

१२४. हे जीव, जिह्वेन्द्रिय का संवरण कर। स्वपूर्ण
जिह्वेन्द्रिय भक्षण भला नहीं होता। गल से मछली गल के
दुख सहती है और तड़फड़ा कर मरती है।

१२५. हे मूढ़, घ्राणेन्द्रिय को वश में कर और विषय-
घ्राणेन्द्रिय कषाय से बच। गंध का लोभी शिलीमुख (भ्रमर)
कमल में कुम्हला कर पड़ा है।

जाते हुए नयनों
ग को दीपक पर

मणगच्छहं मणमोहणहं जिय गेयहं अहिलासु ।
गेयरसें हियकण्णडा पत्ता हरिण विणासु ॥ १२७ ॥

एक्केहिं इंदियमोक्कलउ पावइ दुक्खसयाइं ।
जसु पुणु पंच वि मोक्कला तसु पुच्छिज्जइ काइं ॥ १२८ ॥

विछउ होहिं म इंदियहं पंचहं विण्णि णिवारि ।
इक्क णिवारहि जीहडी अण्ण पराई णारि ॥ १२९ ॥

संचहि गुरुवयणंकुसहिं मेल्लि म ढिल्लउ तेवं ।
मुहं मोडइ मणहत्थियउ संजमभरतरु जेवं ॥ १३० ॥

परिहरि कोहु खमाइ करि मुएहि कोहमलेण ।
ण्हाणें सुज्झइ भंतिकउ छित्तउ चंडालेण ॥ १३१ ॥

मउयत्तणु जिय माणि धरहि माणु पणासइ जेण ।
अहवा गिमिरु ण टोहइ गरहु मयणि डिएण ॥ १३२ ॥

माया मिल्लही थोडिय वि दूसइ चरिउ विसुद्धु ।
कंजियबिंदुएं वि मुडई गुडु वि गुलिपंउ दुधु ॥ १३३ ॥

---

१ अ. °मोहणई. २ अ. मीवइ. ३ क. एक वि. ४ अ. इंदिउ. ५ अ. क. द. होर. ६ क. जीभडी, अ. जीहडिय. ७ क. तेव. ८ अ. प. अह. ९ अ. संजमु भर. १० अ. क. जंत. ११ क. मुंचहु. १२ अ. दुरह णार. १३ अ. क. °बिंदु वि पड रहइ. १४ अ. क. वलियउ.

१२७. कुछ अच्छे, मनमोहक गीत की, हे जीव, अभिलाषा
कर्णेन्द्रिय (मत कर)। कर्णहारी गीत के रस से हरिण
विनाश को प्राप्त हुए।

१२८. एक ही इन्द्रिय के स्वच्छन्द होने से सैकड़ों दुख
पंचेन्द्रिय प्राप्त होते हैं। जिसकी पांचों इन्द्रिय मुक्त हैं
उसका तो पूछना ही क्या है।

१२९. पांचों इंद्रियों के सम्बन्ध में ढीला मत हो। दो का
जिह्वा निवारण कर। एक जीभ को रोक और दूसरे
और पराई पराई नार।

१३०. गुरुवचन रूपी अंकुश से खींच, जिससे मद्दापन
मन रूपी हाथी, को छोड़कर मनरूपी हाथी संयम रूपी हरे भरे
संयमरूपा वृक्ष वृक्ष की ओर मुख मोड़े।

१३१ क्रोध को छोड़ और क्षमा धारण कर। क्रोध रूपी
क्षमा शुद्धि मैल से मुक्त हो। भ्रान्ति में पड़ा हुआ मनुष्य ही
घंडाल से छुआ जाकर स्नान से शुद्ध होता है।

१३२. हे जीव, मृदुता को मन में धारण कर जिससे
मार्दव मान का प्रणाश हो। सूर्य के गगन में स्थित होने
पर तिमिर नहीं ठहर सकता।

१३३. माया को छोड़ जो थोड़ी भी विशुद्ध चरित्र को
माया त्याग दूषित कर देती है। कांजी के बिन्दुमात्र से शुद्ध,
गुडीला दूध भी फट जाता है।

लोहु मिल्लि चउगइसलिलु हलुवउ जायइ जेम ।
लोहमुक्कु सायरु तरइ पंक्खि परोहणु तेम ॥ १३४ ॥

मोहुं णु छिज्जउ दुब्बलउ होइ इयरु परिवारु ।
हलुवउ उग्घाडंतयहं अह व णिरग्गलु वारु ॥ १३५ ॥

मिच्छत्तें णरु मोहियउ पाउ वि धम्मु मुणेइ ।
मंति कवण धत्तूरियउ ढेल्लु वि सुवण्णु भणेइ ॥ १३६ ॥

जइ इच्छहि संतोसु करि जिय सोक्खहं विउलाहं ।
अह चा णंदु ण को करइ रवि मेल्लिवि कमलाहं ॥ १३७ ॥

मणुयहं विणयविवज्जियहं गुण सयल वि णासंति ।
अह सरवरि विणु पाणियइं कमलइं केम रहंति ॥ १३८ ॥

विज्जावच्चें विरहियउ वयणियरो वि ण ठाइ ।
सुक्कसरहु किं हंसउलु जंतउ धरणहं जाइ ॥ १३९ ॥

तउझाएं णाणहं पसरु रुज्झइ इंदियगाउ ।
पच्चूसें सूरुग्गमणि धूवंडकुलु णिच्छाउ ॥ १४० ॥

---

१ क. परोहण. २ द. मोहुण छिज्जइं. ३ अ. क. द. णिरग्गल. ४ अ. क. ढेल्लु सि सुण्णु. ५ अ. ज. द. मच्छादि. ६ ज. कु वि. ७ अ. क. घूवड.

१३४. लोभ को छोड़ जिससे चतुर्गति रूपी जल हलका
लोभत्याग हो जाय। देख, लोहमुक्त प्रोहण (नौका) सागर को तर जाती है।

१३५. मोहका क्षय हो जाने से अन्य परिवार (आपही)
मोहत्याग दुर्बल हो जाता है। अर्गला रहित द्वार उघाड़ने में हलका होता है।

१३६. *मिथ्यात्व से मोहित नर पाप को भी धर्म मानता*
मिथ्यात्व है। धतूरे से मत्त पुरुष वल को भी सुवर्ण कहे इसमें क्या भ्रान्ति है।

१३७. यदि तू सुख की इच्छा है, तो, हे जीव, सन्तोष
सन्तोष कर। कमलों को आनन्द सूर्य को छोड़कर और कौन करेगा ?

१३८. विनय से विवर्जित मनुष्यों के सकल गुण नष्ट हो
[illegible] जाते हैं। [illegible] के सरोवर में कमल किस प्रकार [illegible]

लोहु पिल्लि चउगइसलिलु हलुवउ जायइ जेम ।
लोहमुक्कु सायरु तरइ पेक्खि परोहणु तेम ॥ १३४ ॥

मोहु णु छिज्जइ दुब्बलउ होइ इयरु परिवारु ।
हलुवउ उग्घाडंतयहं अह थ णिरग्गलु धारु ॥ १३५ ॥

मिच्छत्तें णरु मोहियउ पाउ वि धम्मु मुणेइ ।
मंति कवण धत्तूरियउ हेलु वि सुवण्णु भणेइ ॥ १३६ ॥

जइ इच्छहि संतोसु करि जिय सोक्खहं विउलाहं ।
अह धा पंदु ण को करइ रवि मेल्लिवि कमलाहं ॥ १३७ ॥

मणुयहं विणयविवज्जियहं गुण सयल वि णासंति ।
अह सरवरि विणु पाणियइं कमलइं केम रहंति ॥ १३८ ॥

विज्जावच्चें विरहियउ वयणियरो वि ण ठाइ ।
सुक्कसरहु किं हंसउलु जंतउ धरणहं जाइ ॥ १३९ ॥

सज्झाएं णाणहं पसरु रुज्झइ इंदियगाउ ।
पच्चूसें खरुग्गमणि घूयंडकुलु णिच्छाउ ॥ १४० ॥

---

१ क. परोहण. २ द. मोहुण छिज्जइं ३ अ. क. द. णिरग्गल. ४ अ. क. हेलु वि सुण्णु. ५ अ. ज. द. अच्छहि. ६ न. कुवि. ७ अ. क. घूयड.

१३४. लोभ को छोड़ जिनमें चतुर्गति रूपी जल [illegible]
लोभत्याग हो जाय। देख, लोहमुख [illegible] ([illegible]) [illegible]
को नष्ट जाती है।

१३५. मोहबल नष्ट हो जाने से अन्य परिग्रह (आसक्ति)
मोहत्याग दुर्बल हो जाता है। अकेला [illegible] द्वारा उखाड़ने से
हल्का होता है।

१३६. मिथ्यात्व से मोहित जन पाप को और धर्म मानता
मिथ्यात्व है। धतूरे से मत्त पुरुष [illegible] को और सुवर्ण को
इसमें क्या भ्रान्ति है।

१३७. यदि तुझे सुख की इच्छा है, तो, हे जीव, सन्तोष
सन्तोष कर। [illegible] को आनन्द [illegible] को [illegible] और
कौन करेगा?

१३८. विषय से विचलित मनुष्यों के [illegible] सुख नष्ट हो
विषय जाते हैं। बिना पानी के सरोवर में [illegible] किस
प्रकार रह सकते हैं?

१३९. विषवृक्ष से [illegible] [illegible] और नहीं
विषवृक्ष [illegible]। [illegible] सरोवर से [illegible] हुआ [illegible]
[illegible] ([illegible]) [illegible] सकता है?

१४०. [illegible] से [illegible] [illegible]
[illegible] का [illegible] होगा
[illegible]

गुणवंतहं सहु संगु करि भल्लिम पावहि जेम ।
सुवणसुंपत्तविवज्जियउ वरतरु वुच्चइ केम ॥ १४१ ॥

सत्तु वि महुरइं उवसमइ सयल वि जिय वसि हुंति ।
चाँइ कवित्तें पोरिसइं पुरिसहु होइ ण कित्ति ॥ १४२ ॥

भोयणु मँउणें जो करइ सरसइ सिज्झइ तासु ।
अहे वा वसइ समुद्दि जिय लच्छिम करहुं णिवासु ॥१४३॥

विसँयकसाय वसणणिवहु अण्णु जि मिच्छाभाउ ।
पिसुणत्तणु कक्कसवयणु मिल्लंहि सयलु अणाउ ॥ १४४ ॥

अण्णाएं आवंति जिय आवइ घरण ण जाइ ।
उम्मग्गें चल्लंवयहं कँटइं भज्जइ पाउ ॥ १४५ ॥

परिहरि पुत्तु वि अप्पणउ जसु अण्णायपवित्ति ।
अप्पणियइं लालइं मरइ कुसियारउ णउ भंति ॥ १४६ ॥

अण्णाएं बलिँयहं वि खउ किं दुब्भलैंहं पेंं जाइ ।
जहिं वाएं वधंति गय तेंहिं किं सूणी ठाइ ॥ १४७ ॥

---

१ ज. द. सवण. २ फ. सपत्त. ३ ज. वुज्झइ. ४ फ. घाउ; अ. घाइ. ५ अ. मोणि ६ द. अह व वसाइ। ज. वसाय. ७ अ. फ. ज. करइ. ८ फ. वसाणि कसाए विसणमय. ९ अ. फ. द. मिल्लिवि. १० अ. ज. कंटउ. ११ अ. बलियउ. १२ अ. फ. ज. द. दुब्बलउ. १३ ज. द. म. १४ फ. ज. निह.

१४१. गुणवानों का संग कर जिससे भलाई पावे। सुजन
सुसंगति और गुणवों से विवर्जित उत्तम वृक्ष कैसे कहा
जा सकता है?

१४२. शत्रु भी मधुरता से शान्त हो जाता है और सभी
माधुर्य, त्याग जीव वश में हो जाते हैं। त्याग, कवित्व और
और पौरुष पौरुष से पुरुष की कीर्ति होती है।

१४३. जो मौन से भोजन करता है उसे सरस्वती सिद्ध
मौन-भोजन होती है। लक्ष्मी समुद्र में निवास करती है
इसलिये समुद्र (स+मुद्रा) में उसका निवास
बताओ।

१४४. विनय-कषाय, व्यसनसमूह, पिशुनत्व, कर्णदायपन
त्याज्य भाव और सकल अन्याय इनको छोड़।

१४५. अन्याय से (लक्ष्मी) भले तो आजाती है पर
अन्याय थरी (रोकी) नहीं जा सकती। उन्मार्ग में चलने
वालों का पांव कांटे से भग्न होता है।

१४६. जिसकी अन्याय में प्रवृत्ति हो उसका परिहार कर
अन्यायी का त्याग चाहे वह अपना पुत्र भी हो। पुरियारा अपने ही
काल (खाद) से मरता है, इसमें भ्रान्ति नहीं।

१४७. अन्याय से बलवानों का भी क्षय हो जाता है, क्या
अन्याय से नाश दुर्बल का न होगा? जहां वायु से गज भी उड़
जाते हैं वहां क्या रुई ठहर सकती है?

अण्णाएं दालिद्दियहं रे[1] जिय दुद्धु आवग्गु ।
लक्कडियेंहं[2] विणु खोडयहं मग्गु साचिक्खिल्लु[3] दुग्गु ॥ १४८ ॥

अण्णाएं दालिद्दियहं ओहट्टइ णिव्वाहु ।
लुग्गउ पायपसारणइं फाटेंइ को संदेहु ॥ १४९ ॥

ता अच्छउ जिय पिसुणमइ संगु जि ताह विरुद्धु ।
सप्पहं संगें कड्ढियउ चंदणु पिक्खुँ सुयंधु ॥ १५० ॥

विहडावइ ण हु संघडइ पिसुणु परायउ णेहु ।
टालइ रयंइ ण उच्छिडउ उंदरु को संदेहु ॥ १५१ ॥

धम्मेँ विणु जे सुक्खडा तुट्टा गया वियार ।
जे तरुवर खंडिवि खुडिय ते फल इक्क जि वार ॥ १५२ ॥

सुहियउ हुवउ ण को वि इह रे जिय णरु पावेण ।
कद्दमि ताडिउ उट्ठियउ गिंदुउ दिट्ठउ केण ॥ १५३ ॥

रे जिय पुण्ण ण धम्मु किउ एवहिँ करि संताव ।
भंति कवण विणु णावियइं खडहडि णिवडइ णाव ॥१५४॥

---

१ ज. द. अरे. २ ज. द. लकडियइं. ३ अ क. सचिखिल्लु ४ अ. ज. फट्टइ. ५ अ. पिक्खि. ६ अ. क रयणिहि उच्छिडउ. ७ अ. उंदुरु ८ ज. द. ण दोसइ अरि जिय को पावेण ९ ज छिंदुउ; द. हिंदुउ.

१४८. हे जीव, अन्याय से दुरिन्द्रियों का सुख पड़ता है। बिना लकड़ी के मोड़ के मार्ग कीचड़मय और दुर्गम हो जाता है।
अन्याय से दुःखादि

१४९. अन्याय से दुरिन्द्रियों का निर्वाह भी छूट जाता है। जैसे पत्र पांव पसारने से पटकता ही इसमें क्या सन्देह है।
अन्याय से निर्वाह-हानि

१५०. इसलिये, हे जीव, पिशुनमति को अलग रहते हैं। उसका संग भी विरुद्ध (बुरा) होता है। सर्प के संग से, देख, सुगन्धी चन्दन भी काट डाला जाता है।
पैशुन्य

१५१. पिशुन पराये स्नेह को तोड़ता है जोड़ता नहीं। उंदीर (मूषक) उत्तरीय (वस्त्र) को काटता है, रचता नहीं।

१५२. धर्म के बिना जो सुख भोगे हैं वे विचारो कि छूट गये। जो पूरा को काटकर लौटे गये हैं वे खाल एक बार के ही हैं।
धर्मरहित सुख

१५३. हे जीव, पाप से यहां कोई नर सुखी नहीं हुआ। कीचड़ में भागी हुई और उठती हुई किसने देखी है?
पाप से सुख नहीं.

१५४. हे जीव, 'पूर्व में धर्म नहीं किया' इसका संताप कर। बिना मस्तिष्क के नाव बहुतों पर जा पड़े तो इसमें क्या भ्रान्ति है।
धर्म नहीं है

अग्गाएं हालिहियइं रे जिय दइ आरग्गु ।
लक्कडियइं विणु मोडयइं भग्गु माणिक्कलु दुग्गु ॥ १४८ ॥

अप्पाएं हालिहियइं ओरइड णिच्चाह ।
दुग्गउ पायपसारणइं काइं को भंदेहु ॥ १४९ ॥

ता अच्छउ जिय पिसुणयइ मंगु जि ताह विरुद्धु ।
सप्पहं संगें कड्ढियउ चंदणु पिक्खु सुयंधु ॥ १५० ॥

विहडावइ ण हु संघडइ पिसुणु परायउ णेहु ।
टालइ रयंइ ण उसिहउ उंदरु को मंदेहु ॥ १५१ ॥

धम्में विणु जे सुक्खडा तुड्डा गया वियार ।
जे तरुवर खंडिवि सुद्धिय ते फल इक्क जि वार ॥ १५२ ॥

सुहियउ हुयउ ण को वि इह रे जिय णरु पावेण ।
कद्दमि वाडिउ उद्वियउ दिट्ठउ दिट्ठउ केण ॥ १५३ ॥

रे जिय पुण्ण ण धम्मु किउ एवहिं करि संताव ।
मंति कवण विणु णावियइं खडहडि णिवडइ णाव ॥१५४॥

---

१ ज. द. अर. २ ज. द. लक्कडियइं. ३ अ क सचिधिक्कु ४ अ. ज. फट्टइ. ५ अ. पिस्सिय. ६ अ. क. रयणिहिं उत्तिहउ. ७ अ. उंदुरु ८ ज. द. ण होरसइ अरि जिय को पावेण ९ ज. छिदुउ; द. झिदुउ.

हे जीव, अन्याय से दरिद्रियों का दुःख पड़ता है। बिना लकड़ी के खोड़े के मार्ग कीचड़मय और दुर्गम हो जाता है।

अन्याय से दरिद्रियों का निर्वाह भी टूट जाता है। जीर्ण पत्र पांव पसारने से फटेगा ही इसमें क्या सन्देह है।

इसलिये, हे जीव, पिशुनमति को अलग रहने दे। उसका संग भी विरुद्ध (बुरा) होता है। सर्प के संग से, देख, सुगन्धी चन्दन भी काट डाला जाता है।

पिशुन पराये स्नेह को तोड़ता है जोड़ता नहीं। उंदीर (मूषक) उत्तरीय (वस्त्र) को काटता है, रचता नहीं।

धर्म के बिना जो सुख भोगे हैं वे विचारले कि टूट गये। जो वृक्ष को काटकर लौटे गये हैं वे फल एक बार के ही हैं।

हे जीव, पाप से यहां कोई नर सुखी नहीं हुआ। कीचड़ में मारी हुई गेंद उठती हुई किसने देखी है!

हे जीव, 'पूर्व में धर्म नहीं किया' इसका संताप कर। बिना नाविक के नाव चढ़ाओ
तो इसमें क्या भ्रान्ति है।

जेण सुदेउ सुणरु हवसि सो पइं किंयउ ण धम्मु ।
तिण्णि वि छत्तें वेरियहि इक्कु पाणिउ अरु धम्मु ॥१५५॥

अभयदाणु भयभीरुयहं जीवहं दिण्णु ण आसि ।
बार बार मरणहं डरहि केम चिराउसु होसि ॥ १५६ ॥

विज्जावच्चु ण पइं कियउ दिण्णु ण ओसहदाणु ।
एवहिं वाहिहिं पीडियउ कंदि म होहि अयाणु ॥ १५७ ॥

संघहं दिण्णु ण चउविहहं भत्तिए भोयणदाणु ।
रे जिय काइं चडप्फडहि दूरीकयणिव्वाणु ॥ १५८ ॥

पोत्थय दिण्ण ण मुणिवरहं विहिय ण सत्थहं पुज्ज ।
मइ पंडियउ कवित्तु गुणु चाहहि केम णिलज्ज ॥ १५९ ॥

पाउ करहि सुहु अहिलसहि परे मित्तिणे वि ण होइ ।
मंडुण्णियॅ वाइंयइ अब कि चक्खइ कोइ ॥ १६० ॥

गुरुआरंभइं णरयगइ विम्भकसाय हवंति ।
इक्कछिद्दिय पाहणभरिय बुड्डइ णाव ण भंति ॥ १६१ ॥

---

१ ज. थिरयहि. २ अ. भीतयहं. ३ अ. चिरायउ ४ अ. संघहं. ५ अ. क. द. ॰विहहं. ६ अ. कवित्त॰. ७ क. द. परि. ८ ज. मायइ. ९ अ. ज. वाविंयइ. १० अ. द ॰आरंभहं. ११ अ. क. णिरय॰.

कूडतुलामाणाइयहं हरिकरिखरविसमेस ।
जो पचइ गंडपेखणउ सो गिण्हइ बहुवेसे ॥ १६२ ॥

हॅलुवारंमहं मणुयगइ मंदकसायहं होइ ।
छुडु सावउ धणु वाडुडइ लाहउ पुणरवि होइँ ॥ १६३ ॥

सम्मत्तें सावयवयहं उप्पज्जइ सुरराउ ।
जो गविगिट्ठउं छंडियइ सो धारइ किम जाउं ॥ १६४ ॥

धम्में जं जं अहिलसइ तं तं लहइ असेसु ।
पावें पावइ पावियउ दालिद्दु वि सकिलेसु ॥ १६५ ॥

धम्में हरिहलचक्कवइ कुलयरु जायइ कोइ ।
भुवणत्तयवंदियचलणु कु वि तित्थंकरु होइ ॥ १६६ ॥

जासु जणणि सग्गागमणि पिच्छइ सिविणयपंति ।
पहतेएं संभावियइ सुरग्गमणु ण भंति ॥ १६७ ॥

जो जम्मुच्छवि ण्हावियउ अमियघडहिं सक्केण ।
किम ण्हाविज्जइ अतुलबलु जिणु अह वागकेण ॥ १६८ ॥

---

१ ज. कुडतुला कुडमाणयहं. २ ज पइ. ३ अ. क. मेस. ४ अ. क. हलुआ°. ५ क. कोइ. ६ क. वोगविणठ्ठउ, अ. द. णिट्ठिउ. ७ अ. जाइ. ८ क द. पायह. ९ ज °णि.

१६२. कूट तुला, मानादि (झूठे तराजू, बाँट आदि) रखने वाले सिंह, हाथी, गधा, घिरगाले व मेष (बकरा) होते हैं। जो नट का तमाशा करता है वह बहुत वेष धारण करता है।
कपट-व्यापार का फल

१६३. लघु आरम्भ और मन्दकषाय वालों को मनुष्य-गति-प्राप्त होती है। यदि श्रावक धन का व्यापार करता है तो फिर लाभ होता ही है।
मनुष्य-गति की प्राप्ति

१६४. सम्यक्त्व-सहित श्रावक के धर्म से सुरराज उत्पन्न होता है। जो इन्द्रियों की निद्रा को छोड़ देता है वह जाने से कैसे रोका जा सकता है?
इन्द्रत्व-प्राप्ति

१६५. धर्म से जो जो अभिलाषा करता है सो सब पाता है। पाप से पापी क्लेशमय दारिद्र्य पाता है।
यथेष्ट प्राप्ति

१६६. धर्म से कोई हरि, हर, चक्रवर्ती व कुलकर उत्पन्न होता है और कोई तीर्थंकर होता है जिसके चरणों की तीनों लोक वन्दना करते हैं।
तीर्थंकर पद-प्राप्ति

१६७. स्वर्ग से आगमन के समय उनकी जननी स्वप्न-पङ्क्ति देखती है। सूर्योदय प्रभा के तेज से संभावित होता है इसमें भ्रान्ति नहीं।
गर्भकल्याण

१६८. जन्मोत्सव के समय उनका स्नान शक्र अमृत के घड़ों से करता है। अतुलवर्ती जिन भगवान् भक्तों के द्वारा कैसे नहलाये जा सकते हैं।
जन्म कल्याण

सुरसायरि जसु णिक्खमणि घल्लइ चिहुरं सुरिंदु ।
अह उत्तमकज्जहं हवइ ठाउ जि खीरसमुद्दु ॥ १६९ ॥

णाणुग्गमि जसु समसरणि पत्तामरसंघाउ ।
होइ कमलैमउलियभसलु सरुग्गमणि तलाउ ॥ १७० ॥

जसु पचुत्तमेराइयउ विलुलंतो वि असोउ ।
अइदूरुज्झियपरियणहं किम उप्पज्जइ सोउ ॥ १७१ ॥

धारिउ तिमिरु जिणेसरहं भामंडलु अइदित्तु ।
हयरासु होइ सुहावणउ इत्थु ण काइं विचित्तु ॥ १७२ ॥

मइउसरणु सिलीमुहउ कुसुमासणि घिप्पंति ।
सुमणस अलिपविगज्जिया जिणचलणहं णिवडंति ॥१७३॥

धवलु वि सुरमउडंकियउ सिंहासणु पहु देइ ।
अह या सुरमणिमंडियउ जिणवेरआसणु होइ ॥ १७४ ॥

सद्दमिगिण दुंदुहि रडइ छंडहु जीवहं वेरि ।
इक्कारइ णर तिरिय सुर एरिस होइ गंभीरि ॥ १७५ ॥

---

१ द. णिक्खमणि. २ ब. चिहुर. ३ ब कज्जहु. ४ ब. द. °लवि. ५ ब. होइ. ६ ब °हुल. ब °दुरि, द °दरि. ७ ब. सु (सु. ?), द म.

१६९. तप कल्याण — निष्क्रमण के समय सुरेन्द्र उनके केशों को क्षीरसागर में घालते (डालते) हैं। उनका कार्य का ठांव भी क्षीरसमुद्र होता है।

१७०. ज्ञान कल्याण — ज्ञानोदय के समय उनके समवसरण में देवों का समूह प्राप्त होता है। सूर्योदय के समय तालाब कमलों पर मुकुलित भ्रमरों से युक्त होता है।

१७१. अशोक — उनके ऊपर उत्तम पत्रों से विभाजित अशोक लहलहाता है। जिन्होंने पत्नियों का बहुत दूर से परित्याग कर दिया उन्हें कैसे शोक उत्पन्न हो सकता है?

१७२. भामण्डल — जिनेश्वर का अंधकार दूर हुआ है, अतः उनका भामण्डल अतिदीप्तिमान, तम का नाश करने वाला और सुहावना होता है इसमें कुछ विचित्र नहीं है।

१७३. पुष्पवृष्टि — मार्गणवाण शिलीमुख कुसुमवाण पर दया हो जाते हैं और अतीवविराजित सुमनस जिन भगवान् के चरणों में पड़ते हैं।

१७४. सिंहासन — सुरमुकुटांकित धवल सिंहासन भी बहुत शोभायमान है। जिनवर का आसन सुरमणिअंकित होता है।

१७५. दुंदुभि — शब्द के मिस से दुंदुभि कहती है 'जीवों के प्रति प्रेम रखो'। यह भव, निर्बंध और सुखों को दर्शाती है। यह ऐसी वाणी बोली है।

पामर ससहरकरधवल जसु चउसट्ठि पडंति ।
हंसिणिव जिणपासट्ठिया अह सचामर हुंति ॥ १७६ ॥

छत्तइं छणससिपंडुरइं सुर णर णाय धरंति ।
णिरादरसुरचक्किहिं गहिय जिणपुंडरिय हवंति ॥ १७७ ॥

झुंणिअतिसयसंपुण्णहल जीवा तासणि जासु ।
अमियसरिसें हियमहुर गिर अह व ण वल्लह कासु ॥१७८

एह विहूइ जिणेसरहं पुण धम्में एवड्डें ।
पणसइ णयणाणंदयरि होइ वसंतें गंड ॥ १७९ ॥

एवंविहु जो जिणु गहइ वंछिउ सिज्झइ तासु ।
बीजें अह णा णिणिवइं रोविय होइ ण कासु ॥ १८० ॥

जो जिणु ण्हावइ घयपयहिं सुरहिं ण्हविज्जइ सोइ ।
सो पावइ जो जं करइ एहु पसिद्धउ लोइ ॥ १८१ ॥

गंधोदउ जि जिणवरहं ण्हाणियं पुण्णु वहन्तु ।
सिरहं दिंतु वि विमलअंजलि को वारइ पसरंतु ॥ १८२ ॥

---

१ अ. °हं. ८ अ. झुणि, अ. झुणि. ३ अ वाहि°
४ अ क. एवड्डू. ५ अ. क. °विह. ६ अ द. विझं. ७ °
वंछियफलं ८ अ. ण्हाविहिं. ९. द जेसहि. १० अ. ण्हविहिं.

१७६. चन्द्रकिरणों के समान धवल चौसठ चमर उनके
चमर ऊपर ढुल्ते हैं। हर्ष से जिन भगवान् के पास
स्थित होने वाले सचामर (सचे भ्रमर)
होते हैं।

१७७. पूर्णचन्द्र के समान श्वेत छत्र सुर नर और नाग
छत्र धारण करते हैं। जिन भगवान् के पुंडरीक (छत्र)
विषधर, सुर और चक्रवर्तियों द्वारा गढ़े जाते हैं।

१७८. उनके शासन में ध्वनि द्वारा जीवों के सम्पूर्ण
दिव्यध्वनि फलों का व्याख्यान होता है। अमृत के सदृश,
हृदयमधुर गिरा किसे प्यारी नहीं लगती?

१७९. यह जिनेश्वर की इतनी विभूति धर्म से ही हुई
है। नयनानन्दकारी घनश्री घरसम्म से ही मण्डित
होती है।

१८०. इस प्रकार के जिन भगवान् की जो पूजा करता
जिन पूजा है उसका वाञ्छित सिद्ध होता है। बीज के
सींचने से किसकी खेती (समृद्ध) नहीं होती?

१८१. जो जिन भगवान् को घृत और पय से स्नान
घृत-पय-प्रक्षाल कराता है उसे सुर नहलाते हैं। 'जो जैसा करता
है वैसा पाता है' यह लोक में प्रसिद्ध ही है।

१८२. जिनवर के गंधोदक स्नान से बहुत पुण्य होता
गंधोदक-प्रक्षाल है। विमल जल में पड़े हुए तेल के बिन्दु को
फैलने से कौन रोक

दिइ जिणिंदहं जो फलइं तसु इच्छियइं फलंति ।
भोयधरहं गय रुक्खडा सयल मणोरहं दिंति ॥ १९० ॥

जिणपयगयकुसुमंजलिहिं उत्तमासियसंजोउ ।
रगयरविकिरणावलिए णलिणिहिं लच्छिम होइं ॥१९१॥

जिणपडिमइं काराविययइं संसारहं उत्तारु ।
मणडियहं तरंडउ वि अह व ण पावइ पारु ॥ १९२ ॥

तणभवणइं काराविययइं लब्भइ सग्गि विमाणु ।
ह टिकइं आराहणहं होइ समाहिहि ठाणु ॥ १९३ ॥

धवलावइ जिणभवणु तसु जसु कहिं मि ण माइ ।
सिकरणियरु सरयमिलिउ जगु धवलणहं वसाइ ॥१९४॥

पइठावइ जिणवरहं तगु पसरइ जगि कित्ति ।
हियेल छणससिगुणइं को वारइ पसरंति ॥ १९५ ॥

रणिउ दिण्णउ जिणहं उज्जोयइं सम्मत्तु ।
णुब्भासइ सुरगिरिहिं सुरु पयाहि ण दिंतु ॥ १९६ ॥

---

१ द. मणोहर हुंति. २ ज द. होउ. ३ क °हु, द.
४ ज. आराहणइं; द. आराहणिहिं. ५ ज. ससिहर. ६ क.
हं. ७ ज. दीवउ दिण्णउ जिणवरहं. ८ क. द. उज्जोइय.

फल-पूजा फल

१९०. जो जिनेन्द्र को फल चढ़ाता है उसको यथेष्ट फ
प्राप्त होता है। भोगभूमि के वृक्ष उसके स
मनोरथों को पूरा करते हैं।

कुसुमाञ्जलि फल

१९१. जिनदेव के पद पर चढ़ाई कुसुमाञ्जलि से उत्त
श्री का संयोग होता है। सरोवर में पड़ी रवि की
किरणावलि से कमलों में लक्ष्मी आती है।

जिन-प्रतिमा कराने का फल

१९२. जिनप्रतिमा कराने से संसार से उतार होता है।
गमन के लिये उद्यत पुरुष को तरंड (डोंगा) ही
पार लगाता है।

जिनमंदिर निर्माण फल

१९३. जिन-मंन्दिर बनवाने से स्वर्ग में विमान मिलता
है, और आराधना की टीका करने से समाधि में
स्थिति होती है।

जिनमंदिर की सफेदी कराने का फल

१९४. जो जिन-मन्दिर को धवल करवाता है (सफेदी
करवाता है) उसका यश कहीं नहीं माता।
शरत्काल से मिलकर चन्द्रकिरणों का समूह
जगत् भर को धवल बना देता है।

जिन-प्रतिष्ठा फल

१९५. जो जिनवर की प्रतिष्ठा करता है उसकी जगत्
में कीर्ति फैलती है। पूर्णचन्द्र के गुणों से प्रसार
करती हुई उदधि की वेला (तरंग) को कौन
रोक सकता है?

आरती-फल

१९६. जिनदेव को दी हुई आरती सम्यक्त्व का उद्योत
करती है। सुरगिरि पर पदार्पण करते ही सूर्य
भुवन को उद्भासित कर देता है।

तिलयइं दिण्णइं जिणवरहं जगि अणुराउ ण माइ ।
चंदकंति चंदहं मिलिउ पाणिय दिण्ण ण ठाइ ॥ १९७ ॥

चंदोवइं दिण्णइं जिणहं मणिमंडविय विमाल ।
अह संबंधा ससहरहं गईतारायणमाल ॥ १९८ ॥

भव्वुच्छाहणि पावहरि जिणहरि घंट रसंवि ।
कुमुयाणंदणि तमहरणि छणजामिणि ण हु मंति ॥ १९९ ॥

धिधचमरछत्तइं जिणहं दिण्णइं लब्भइ रज्जु ।
अह पारोहहिं णिग्गयहिं वड्ड वित्थरइ ण चोज्जु ॥ २०० ॥

जिणहरि लिहियइं मंडियइं लच्छि समीहिय होइ ।
पुण्णु महंतउ तासु फलु कहिवि णो सक्कइ कोइ ॥ २०१ ॥

जंपूदीउ समोसरणु णंदीसरें लोयाणि ।
जिणवरभवणि लिहावियइं सयलहं दुक्खहं हाणि ॥२०२॥

दिण्णइं वत्थ सुअजियहं दिव्वंबर लब्भंति ।
पाणिउ पेसिंउ पउमिणिहिं पउमइं देइ ण भंति ॥ २०३ ॥

---

१ ज. उव्वउ कि दिसी ठाइ. २ द. मदि. ३ अ. ग संबंधी. ४ ज. गय°. ५ क. °वर. द. °हर. ६ अ. °छत्तइं. ७ क. द. मज्यइ. ८ ज समाहिय. ९ ज. कि. १० अ. द. णंदीसरि. ११ क. दिण्णें, ज. द. दिण्णा. १२ अ क ज. पाणिउ.

१९७. जिनवर को तिलक चढ़ाने से जगत् में अनुराग
तिलक-फल नहीं माता। चन्द्रकान्त (मणि) चन्द्र से मिलकर पानी देने से नहीं रुकता।

१९८. जिन भगवान् को चढ़ाये हुए मणि-मंडित
चंदेवा और विशाल चंदेवा (ऐसे शोभायमान होते हैं)
लगाने की जैसे ग्रह और तारागणों की माला चन्द्र से
शोभा सम्बद्ध हुई हो।

१९९. जिनगृह में बजता हुआ घंटा भव्यों का उत्साहक
जिनगृह में और पापहारी होता है। पूर्णिमा की रात्रि
घंटा की महिमा कुमुदानन्ददायिनी और अन्धकारहारिणी होती है इसमें भ्रान्ति नहीं।

२००. जिन भगवान् को ध्वजा, चमर और छत्र चढ़ाने
ध्वजा,चमर,छत्र से राज्य मिलता है। मारोहों के निकलने से पद
चढ़ाने का फल का विस्तार बढ़े तो क्या आश्चर्य है।

२०१. जिनगृह में मांडना लिखने से यथेष्ट लक्ष्मी प्राप्त
मांडना लिखने होती है और महापुण्य होता है जिसका फल कोई
का फल रुद्ध नहीं सकता।

२०२. जम्बूद्वीप, समोसरण, नन्दीश्वर व लोकों को
जम्बूद्वीपादि जिनमन्दिर में लिखवाने से सकल दुखों की
लिखाने का फल हानि होती है।

२०३. अर्जिकाओं को वस्त्र देने से दिव्य वस्त्रों की प्राप्ति
अर्जिकाओं की होती है। पद्मसरोवर में पानी का प्रवेश कराने से
[illegible] फल पद पद्म देगा, इसमें भ्रान्ति नहीं।

सारंभइं ण्हवणाइयहं जे सावज्जे भणंति ।
दंसणु तेहिं विणासियउ इत्थु ण कायउ भंति ॥ २०

पुंग्गलु जीवइं सहु गणियँ जो इच्छइ घणचाउ ।
ईंणि सम्मत्तें तसु तणइं किप सम्मत्तु म जाउ ॥ २०५

सम्मत्तें विणु वय वि गय वयहं गयहं गउ धम्मु ।
धम्में जंतें सुक्खु गउ तें विणु णिप्फलु जम्मु ॥ २०६

पुण्णरासिण्हवणाइयइं पाउ लहुं वि किउ तेण ।
विसकणियइं बहु उवहिजलु णउ दूसिज्जइ जेण ॥ २०

तें सम्मत्तु महारयणु हियपंचलि थिरु बंधि ।
तें सहु जहिं जहिं जाहि जिय तहिं तहिं पावहि सिद्धि॥२

दाणघणाविहि जो करइ इच्छिये भोयणिबंधु ।
पिक्कइं सुमणि पराहियइं सो जाणहु जाबंधु ॥ २०९ ॥

तैं कम्मक्खउ मग्गि जिय णिम्मल बोहिसमाहि ।
ण्हवणदाणपूआइयेंइं जें सागयपइ आहि ॥ २१० ॥

---

१ अ. द सावज्जु. २ क. पुग्गलु जीविएसुहु. ३ अ. द. ताणिउ, अ. गणियउ. ४ अ. क. णिसासणाइं. ५ अ. द ह किउ. ६ अ तुहुं. ७ क. आइ. ८ क. पावइ. ९. अ द. इच्छ १० अ विद्धिय. ११ अ क. °पूआरपइं.

२०४. *अभिषेक में दोष नहीं* जो अभिषेकादि के समारम्भों को सावद्य (दोषपूर्ण) कहते हैं उन्होंने दर्शन का नाश कर दिया, इसमें कोई भ्रान्ति नहीं।

२०५. *निर्विवेक से सम्यक्त्वनाश* जो पुद्गल को आँख का साथी गिनकर धन के त्याग की इच्छा करता है उसकी ऐसी सम्मति से सम्यक्त्व कैसे नहीं जायगा?

२०६. *सम्यक्त्वनाश से सुखनाश* सम्यक्त्व के बिना व्रत भी गये। व्रतों के जाने से धर्म गया। धर्म के जाने ही सुख भी गया जिसके बिना जन्म निष्फल है।

२०७. *पुण्यराशि में पापबिन्दु* अभिषेकादि की पुण्यराशि में यदि किसी ने लघु पाप भी कर लिया तो विष के एक कण से समुद्र भर का जल दूषित नहीं हो सकता।

२०८. *सम्यक्त्व से सिद्धि* इससे सम्यक्त्व रूपी महारत्न को हृदय रूपी अंचल में स्थिरता से बांध। उसके साथ, हे जीव, जहां जहां जायगा, तहां तहां सिद्धि पायेगा।

२०९. *भोगों की इच्छा से धर्म* जो भोगबंध की इच्छा से दानार्चन विधि करता है, वह जन्म का अंधा, जानो, उत्तम मणि को कौड़ी मोल बेचता है।

२१०. *वांछनीय फल* इसलिये, हे जीव, अभिषेक, दान, पूजादि से कर्मों के क्षय और निर्मल बोधि समाधि की मांग कर जिससे शाश्वत पद पर आवे।

२११ जिसके मन में पुण्य और पाप समान नहीं हैं ... पाप पुण्य की अर्थात् (अर्थात्) ... मुक्त है। क्या कमल या लोहे ... गमन में मोक्ष निगड़ (शृंखला) प्राणी का पादबन्धन नहीं करती ...

२१२ प्यार, बिन्दु और मात्रा सहित सपञ्च समान का ... समस्याकार विकास किये बिना यदि कोई बाह्यपूरक की पाञ्छा ... (जिन?) की पूजा करे तो वह कामी है इसमें क्या सन्देह है !

२१३ हृदयकमल में आई हुई चन्द्रधवल, स्फटिक के ... (जिन)प्रतिमा की समान शुभ, जिनेश्वर की प्रतिमा चतुर्गति के पाश ... आवरण का कर्म (बन्धन) को तोड़ती है।

२१४ जिसके हृदय में अ सि आ उ सा है उसे पाप अ सि आ उ सा नहीं लगता। जो गहरे पानी में स्थित है उसका (पच पचोले) दावानल क्या कर सकता है !

२१५ पंचनाथ मंत्र है जीव, इस नाम अक्षरों के मंत्र से सब पाप दूर भागते हैं। सिंह की गुंजार से बड़ी हस्ति ... झुण्ड दूर भागते हैं !

२१६. मन अ सि आ उ सा का प्रतिदिन ही की (जप) जो पाप देता है वही फल की से भी होता है और ... नाम अक्षरों से भी। इसमें भ्रान्ति नहीं।

२१७ ... है जीव, जब मोक्षिक गाजस्थान में परिवर्तन हो जाता है उसी समय वह बिन्दु से मूर्तिमान मनुष्य ... को उठा देता है। इसमें भ्रान्ति नहीं।

... अवेतन भी जिन (प्रतिमा) अपने से शुभ ... बिना कर्म से दान देती है। यह अपने ... ही काम है। (इस प्रकार) को ...

मणुयत्तणु दुल्लहु लहिवि भोयहं पेरिउ जेण ।
इंधणकज्जें कप्पयरु मूलहो खंडिउ तेणं ॥ २१९ ॥

दुल्लहु लहिवि णरत्तणु विसयहं तोसिउ जेण ।
पट्टोलयतग्गंथियहं सुरयणु फोडिउ तेण ॥ २२० ॥

दुल्लहु लहि मणुयत्तणउ भोयहं पेरिउ जेण ।
लोहकज्जि दुत्तरतरणि णाव वियारिय तेण ॥ २२१ ॥

दुण्णि सयइं विसुत्तरइं पढियइं सिवगइं दिंति ।
धम्मधेणु संदोहयहं वरपउ दिंति ण भंति ॥ २२२ ॥

णयंसुरसेहरमणिकिरणपाणिय पयपोमाइं ।
संघहं जाहं समुल्लसहिं ते जिण दिंतु सुहाइं ॥ २२३ ॥

दंसणु णाणु चरित्तु तउ रिसिगुरु जिणवरदेउ ।
बोहिसमाहिए सहुं मरणु भवि भवि हुज्जउं एउ ॥ २२४ ॥

इय सावयधम्मदोहा समत्ता ।

---

१ ज. म. में यह दोहा नहीं है. २ क. फेडिउ. ३ अ. पायाँ-सुत्तरइं. ४ ज. सियसुद्ध. ५ क. णव. ६ क. जे पाणियपोमाइं। द. थुतिपाणियपोमाइं. ७ अ क. ज. द. जाइं. ८ अ. तेण जि गुण सहाइ. ९ अ. सिरि° १० क. दिक्खउ एहु.

२१९. दुर्लभ मनुजत्व को पाकर जिसने उसे भो[illegible]
मनुष्य जन्म का प्रेरा उसने इन्धन के लिये कल्पतरु को मूल[illegible]
दुरुपयोग काट डाला।

२२०. दुर्लभ नरत्व का लाभ पाकर जिसने विषयों [illegible]
संतोष माना उसने छशपट में गांठ देने के लिये ([illegible]
उत्तम रत्न को फोड़ डाला।

२२१. दुर्लभ मनुजत्व को पाकर जिसने उसे भोगों में प्रेरा
उसने दुस्तरतरणि नाव को उसका लोहा निकालने
के लिये तोड़ डाली।

२२२. ये बीस ऊपर दो सौ दोहे पढ़ने से शिवगति देते
इस ग्रंथ के हैं। धर्मधेनु अच्छे दोहकों (दुहने वालों) को
पढ़ने का फल उत्तम पय (दुग्ध या पद) देती है इसमें भ्रान्ति
नहीं।

२२३. नमस्कार करते हुए देवों के मुकुटमणियों के
शुभ की प्रार्थना किरणरूप पानी के संसर्ग से जिनके कमलरूपी
चरण प्रकाशमान हैं वे जिनेन्द्र सुख प्रदान करें।

२२४. दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, ऋषि-गुरु, जिनवरदेव
अन्तिम विनति और बोधिसमाधि सहित मरण, ये भव भव में होवें।

इति श्रावकधर्मदोहा समाप्त।

परिशिष्ट

किसी किसी पोथी में कुछ दोहे अधिक पाये जाते हैं जो प्रक्षिप्त ज्ञात होते हैं। वे यहां उद्धृत किये जाते हैं।

दोहा नं. २२ और २३ के बीच म प्रति में —

मज्जहु तिजहु भव्ययणु जेण मई विपरीय।
हीणकुलेसु य जोय कही तसथावर उवजंति ॥
परिहरि मांसहु अरि जिय पंचेंहिं णासी पसेहि।
तस्सु वि थावर धाइही सम्मोछिय बहु होइ ॥

अनुवाद—हे भव्यजन मद्य को त्यागो जिससे मति विपरीत हो जाती है। वह हीनकुलवालों के योग्य कही है। उसमें त्रस और स्थावर जीव उत्पन्न होते हैं।

रे जीव, मांस का परिहार कर। वह पंचेन्द्रिय जीवों के नाश से प्राप्त होता है। उसमें भी त्रस, स्थावर व सम्मूर्छन जीव बहुत होते हैं।

दोहा नं. २८ और २९ के बीच क. प्रति में—

घउ इंदिय विण्णि छह अट्ठह तिण्णि हवंति।
दह घउरिंदिय सीयडा बारह पंच हवंति ॥

इसमें जीवभेदों की संख्या दी है। इसके लिये 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' देखिये।

दोहा नं. १६ और १७ के बीच क. प्रति में—

उक्तं च—सामान्यतो निशायां च जलताम्बूलमौषधम् ।
गृह्णातु चैव गृह्णन्तु मैव सारां फलादिकम् ॥

यह दोहा नं. १७ के भाव की पुष्टि के लिये अन्य ग्रन्थसे उद्-
किया गया है ।

दोहा नं. ७६ और ७७ के बीच म प्रति में—

भरहे पंचमकालहिं ण ग्नेणी महव्ययधारी ।
अत्थि अणुव्वयधारी कोटिहिं लक्खेसु कोई ॥

अनुवाद—भरतक्षेत्र में, पंचमकाल में, श्रेणीबद्ध महाव्रतधारी (मुनि)
नहीं होते । अणुव्रतधारी भी लाखों करोड़ों में कोई होता है ।

दोहा नं. १८१ और १८२ के बीच क प्रति में—

जिणु ण्हावइ उत्तमरसहिं सक्करसम्मपेहिं ।
सो णर जम्मोवहि तरहि दुक्खु ण भंति करेहि ॥
जो पियकंचनपण्णइं जिणु ण्हावइ धरि भाउ ।
सो दुग्गइ गइ अवहरइ अभिय ण दुक्खइ पाउ ॥
दुद्धें जिणवरु जो ण्हवइ मुत्ताहलधवलेण ।
सो संसारि ण संभवइ मुच्चइ पापमलेण ॥
उत्तरहारहिं उत्तरइ दइयइ दहिउ चडंति (?) ।
अवियदं मुच्चइ कलिमलइं जिणदिट्ठउ विहयाउं ॥
सव्वोसहि जिणण्हाहियइं कलिमलरोय गलंति ।
मणवंछियसय संभवहिं मुणिगण एम भणंति ॥

अनुवाद-जो जिन भगवान् को स्नान और आपके उत्तम धर्म है
महात्मा है वह मनोरथ को सरल है इसमें भ्रान्ति मत करो.

जो केवलज्ञानी रूप में जिन भगवान् को भाव धारण कर
महात्मा है वह दुर्गति गति को दूर करता है और जन्मभर उसे पा
नहीं सकता ।

जो पुष्पमाला के समान सरल रूपसे जिनवर को स्नान कराता है वह
संसार में उत्पन्न नहीं होता और पापमल से मुक्त होजाता है ।

दुग्ध की धार के पश्चात् दधि रूपि पड़ता हुआ तथा जिन भगवान्
को देखकर प्रसन्न होता हुआ भव्यों को कलिमल से मुक्त कर देता है ।

सर्वौषधि से जिन भगवान् को नहलाने से कलिमल के रोग दूर
हो जाते है और सैकड़ों मनोवाञ्छित सिद्ध होते है । ऐसा मुनिगण कहते हैं ।

दोहा नं. २०६ और २०७ के बीच अ प्रति में—

पारंभई ण्हवणाइयइं जे सावय जि भणंति ।
दंसण तेहं विणासियउ एत्थु ण कायउ भंति ॥

(यह दोहा नं. २०४ से मिलता है)

दोहा नं. २२३ और २२४ के बीच क. प्रति में—

जो जिण सासण भासियउ सो मइं कहियउ सारु ।
जो पालेसइ भाउ करि सो तरि पावइ पारु ॥
एहु धम्म जो आयरइ चउवण्णहं मह कोइ ।
सो णरु णारि भव्वयणु सुरयइ पावइ सोइ ॥

परिशिष्ट

कमाइं बहुलाइं झंसियइं तान्दु सुन्नइ जेण ।
बहु परमक्खरह चेर तह कम्मक्खउ हुइ तेण ॥
भव्वयणम्मा सुवयण सुम्मइ गच्छइ तेण ।
जइ दिट्ठियउ भयणवइ कहिउ ण किस्यउ तेण ॥

अनुवाद—जो जिनशासन में कहा गया है वही सार मैंने कहा
जो भाव करके इसको पालेगा वह तैर के पार पावेगा।

इस धर्म का चतुर्वर्ण में से कोई भी जो आचरण करेगा वह नरना
भव्यजन सुरगति पावेगा।

बहुत प्रलाप करने से क्या जिससे तान्द सूझे। इसी परमाक्षर को
चिरकाल तक सेओ जिससे कर्मक्षय होवे।

भव्यों के जो सुवचन है उनसे सुगति को जाना है। जिससे भवगति
नहीं देखना पड़े ऐसे कथन को नहीं करना चाहिये।

दोहा न. २२४ के पश्चात् क. प्रति में—

इय दोहायसयपयधम्मं देवसेने उवदिट्ठ ।
लहु अक्खरमत्ताहीयमोपय सयण खमंतु ॥

अनुवाद—इति देवसेन द्वारा उपदिष्ट दोहाबद्ध श्रावकधर्म। लघु अक्षर
मात्रा से हीन जो पद हों उन्हें सज्जन क्षमा करें।

शब्दकोश

इस कोष में संज्ञायें बिना विभक्ति के तथा क्रियायें यथाप्रयोग सम्मिलित की गई हैं और उनके संस्कृत रूपान्तर दिये गये हैं। जो संस्कृत शब्द हिन्दी में उपयुक्त नहीं होते उनके हिन्दी रूपान्तर या समानार्थ शब्द दे दिये गये हैं। जो शब्द कईबार एक ही अर्थ में आया है उसका एक ही दोहा नंबर दिया गया है।

निम्न लिखित संकेताक्षरों का प्रयोग किया गया है:—

गु. – गुजराती, पु. – पुरुष, म. – मराठी; मार. – मारवाड़ी; हेम – हेमचन्द्र कृत प्राकृत व्याकरण.

अ

अइदित्त – अतिदीप्त, १७२.

अइदूरलग्गिय – अतिदूरीभूत, १७१.

अक्खामि – आख्यामि, कहता हूं, १.

अक्खय – अक्षत, १८५.

अक्खियं – आख्यात, १७८.

अगालिअ – अगालित, बिनाछना, ६७.

अगाह – अगाध, १८६.

अग्गि – अग्नि, आगी, १९.

अचेयण – अचेतन, ११८.

अच्चइ – अर्चयति, पूजता है, १८५

अच्छउ – आस्ताम्, दूर रहे, २०.

अज्जु – अद्य, आज, ८८.

अज्झवसाय – अध्यवसाय, १२२.

अट्ठ – अष्ट, आठ, २०.

अट्ठम – अष्टम, आठवां, १५.

अट्ठमि – अष्टमी, १२.

अणत्थोरिय – अ + तुवरित, ५१.
(तुवरी - फिटकरी, म. तुरटी, alum.)

अणग्घ – अनर्घ, ४८.

अणाय – अन्याय, १४४

अणेगोरिंदिय – [illegible], [illegible] [illegible], ११५

अणायमण – [illegible], ७०.

([illegible], [illegible], [illegible], तथा इन तीनों के [illegible] बाले के [illegible] कहलाते हैं.)

अणिवारिय – अनिवारित, १११

अणुमइ – अनुमति, ११.

अणुराअ – अनुराग, १०

अणुवय – अणुव्रत, ५६ ([illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] [illegible] अणुव्रत कहते हैं)

[illegible] – [illegible], [illegible] [illegible] है, ११०

[illegible] – [illegible], ३५

[illegible] – [illegible], १४५

[illegible] – [illegible]

१४१.

[illegible] – [illegible], [illegible]

[illegible] – [illegible] [illegible] है

[illegible], ११

अत्थमिअ – अस्तमित, [illegible]

१७.

अत्थाण – [illegible], ४८

[illegible] [illegible] [illegible] ८४

[illegible] – [illegible], [illegible], १४६

[illegible] – [illegible], ७१

अप्पिय – अप्रिय, ८७.

अब्भत्थाण – अभ्युत्थान, १४१

अमिअ – अमृत, १

अमियपाय – [illegible], ११८

अमियपरिवि – [illegible] १०८

अयाण – [illegible], [illegible] १५०.

अरहंत – अर्हत्, ४

अलिय – [illegible], [illegible], ११

अलिय – [illegible] ([illegible]), [illegible] ([illegible]) १०१

अवराजिय – अपराजित, [illegible], ६०

अवर – अपर, और, १११

अवस्स – अवश्य, [illegible] ३१

अवहि – [illegible] [illegible], ६०

अविरिय – [illegible], [illegible], १००

अविरय – [illegible], [illegible] ७१

असरह – [illegible], ११०.

अ सि आ उ सा – अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, इन पंच परमेष्ठी का अन्याक्षर मंत्र, २१४.
असेस – अशेष, १६५
असोअ – अशोक (वृक्ष), १७१.
अह – अथ, २६
अह व – अथ वा, ६
अहम्म – अधर्म, अधर्मी, १०३.
अहाणअ – आभाणक, कहाना, २४
अहिलसइ – अभिलषते, इच्छा करता है, ४२.
अहिलसिअ अभिलषित, ३७
अहिलास – अभिलाष, ५१.
अंजणगिरि – अंजनगिरि २१.
अंतरि – अन्तरे, अन्दर, २२.
अंधार – अंधकार, ६.
अंब – आम्र, आम, १६०.

आ

आउ – आयातु, आवे, ५८.
आउसंत – आयुस्+अन्त, ७३.
आमिस – आमिष, मांस, २८.
आयरइ – आचरति, आचरण करता है, ७६.
आयहं – एषाम्, इनके, २२.
आयास – आकाश, ५७.
आरत्तिअ – आरात्रिक, आरती, १६५.
आराहण – आराधना, १९३. (भगवती आराधना नाम का ग्रंथविशेष)
आवइ – आयाति, आवे, ८८.
आयल्ल – आरूढ, चढ़ा, १४८.
आवंति – आयान्ती, आती, १४५.
आसागय – आशा+गत, दिशागत, ६६.
आसायअ – आस्वादित, २३.
आसि – आसीत्, १५६.

इ

इकछिद्दिय – एक+छिद्रित, १६१.
इक्क – एक, ४३.
इक्कसअ – एकशत, २१६.
इच्छिय – इष्ट, १६०.
इच्छियलद्धि – इष्ट+लब्धि, ७१.
इणि – अनेन, इस से, २०५.
इत्तिय – इयत्, इतना, १०७.
इत्थु – अत्र, इसमें, ७१.
इयर – इतर, अन्य, २८.

इंछिय – इष्ट्वा, इच्छा करके, ६१
इंदियगाम – इन्द्रिय+ग्राम, १४०
इंधण – इन्धन, २१९

उ

उग्गिट्ठ – उत्कृष्ट, ७४.
उग्गमइ – उद्गच्छति, उदय हो, १०५.
उग्घाडंत – उद्+घाटयत्, उघाड़ने वाले, ११५.
उज्जल – उज्ज्वल, १११.
उज्जोइज्जइ – उद्+द्युत्यते, उजाला किया जाता है, १८४.
उज्जोयइ – उद्+द्योतयति, उजाला करता है, १९९.
उट्ठइ – उत्तिष्ठति, उठता है, १९
उड्डावइ – उड्डापयति, उड़ाता है, २१७.
उट्ठिय – उत्थित, उठा हुआ, १५१.
उणाली – शाकविशेष, १४.
उण्णय – उन्नति, ११४.
उत्तमपइ – उत्तमपदे, °पद पर, ११४.
उत्तार – उत्तारण, उतार, १९२.
उत्तारंति – उत्तारयन्ती, उतारती हुई ८६
उत्तिरिअ – उत्तरीय, वस्त्र, १५१
उद्दिट्ठ – उद्दिष्ट, १६.
उप्पज्जइ – उत्पद्यते, उपजता है १७१
उप्परि – उपरि, ऊपर, १२६.
उप्पहिं – आत्मना, उपतकर ८४.
उप्पाडिअ – उत्पाटित, उखाड़ा, ४०.
उब्भासइ – उद्+भासयति, उभारता है ११६.
उम्मग्ग – उन्मार्ग, १४५
उर – उरस्, उर, ६०.
उल्लालिअ – आर्द्रित, आला (गीला) किया, १९.
उवइट्ठ – उपदिष्ट, ११.
उवएस – उपदेश, ९.
उवएसिय – उपदिष्ट ८.
उवयरइ – उपकरोति, उपकार करता है, ११९.
उवयारहिं – उपकारेण, उपकार कराओ, ११९.
उवयास – उपवास, ११.
उवयासब्भास – उपवास+अभ्यास ११९.

उवसमइ उपशाम्यति, शांत होता है, १४२.
उवहि – उदधि, २०७.
उवहिणीर – उदधि+नीर, ८९.
उवहिवेल – उदधि+वेला, १९५
उव्वरइ – उपकरोति, उबारता है, या,उद्वर्तते, बचता है, १२१.
उहय – उभय, दोनों, ११.
उंदर – उंदुर, मूषक, १५१.

ऊ

ऊसर – ऊपर, ऊसर (अनुपजाऊ) ८१.

ए

... – एते, ये, १८.
...उ – एतद्, यह, २२४.
...ण – एक, १०.
...इम – एतावत्, इतने, ५३
...यग्ग – एकाग्र, १७
...रस – एकादश ग्यारह, १८
...रह – एकादश, ग्यारह, ९
...रहम – एकादशम, ग्यारहवीं १६
...ण – ईदृश, ऐसा, १०२.

एवडु – एतावत्, इतनी १७९.
एवंविह – एवंविध, इस प्रकार, १८०.
एह – एषा, यह, १७९.
एहु – एष, यह, २४.

ओ

ओसहदाण – औषधदान, १५
ओहट्टइ – अपवर्तते, हटता है १४९.

क

कअ – कृत, किया, ८२.
कउ – का, क्या, १८.
कक्कसवयण – कर्कश+वचन,१११
कज्ज – कार्य, काज, २.
कप्पायरण – [illegible], [illegible] ओढ़न, १०.
कट्ठ – काष्ठ, ३१
कड्ढिय – कृष्ट, खींचा गया, १५०.
कडु – कटु, कड़ुआ, १८.
कडुआ – कटु, ११४
कण्णंग – [illegible], [illegible], ९९.
कण्हुय – [illegible], [illegible], १०१.

कणय – कनक, २११
कणिट्ठ – कनिष्ठ, सबसे छोटा ७९
कण्ण – कर्ण, कान, ११८
कत्तरि – कर्तरी, कैंची, १७.
कद्दम – कर्दम, कीच, १५३
कप्पड – कर्पट, कपड़ा, ५६
कप्पयर – कल्पतरु, ९७
कप्पयरु – कल्पतरु, २१२
कम – क्रम, १२.
कम्म – कर्म, १०९.
कम्मक्खय – कर्म+क्षय, २१०
कय – कृत १७.
करइ – करोति, करता है, १८१
करउं – करोमि, करूँ, ८८.
करड – शब्दविशेष करना, १४.
करदि – कुरु, कर, ४.
करहिं – कुर्वन्ति, करते हैं, ५५
करालिय – करालित, १८३.
करि – कुरु, कर, २२.
करिणि – करिणी, हथिनी,१२३.
करेइ – कुर्यात्, करेगा, ६२.
कलंतर – कला+अन्तर, एक भाग
११५.
कलिंगा – फलविशेष, कलींदा, १४.

कल्लाण – कल्याण, ८०.
[तीर्थंकर के गर्भ, जन्म, तप,
ज्ञान और निर्वाण उत्सव
पंच कल्याण कहे जाते हैं ।]
कहि – क्व, कल, ८८.
कवण – का, कौन, ४०.
कवित्त – कवित्व, १४२.
कवडभ – कपट, ६२.
कस – कष, ७.
कसाय – कषाय, ६१.
कह – कथा, ४०.
कहिअ – कथित, ९.
कहिदुं – कथयितुम्, कहने,२०
कहिं – कुत्र, कहीं, २१५.
कंज – (तत्सम), कमल, १२
कंजिय – कांजी, (Butte
milk,) ११३.
कंटअ – कंटक, १४५.
कंदि – स्कन्ध, शुष्क, सूखा, १
काअ – काय, शरीर, ११३.
काइं – किम्, क्या, ६९.
काणण – कानन, वन,
कामक – काम+
[illegible] – का

कायउ – कापि, कोई भी, १८९.
काराविय – कारित, कराई, १९२.
कारियइ – कार्यते, कराया जाता है, २४.
कालत्तय – काल+त्रय, ५.
कासु कस्य, किसे, १७८.
कि – किम्, यथा, ६.
किअ – कृत, किया, ३७.
कित्ति – कीर्ति, १४२.
कित्तिअ – कियत्, कितना, १८३
कित्तिअ – कियता, कितनापन, ११०.
किम – किम्, कैसे, ५६.
किमि – किम्, कैसे, ६७.
किय – कृत, किया, १५५.
किलेस – क्लेश ४८
किविण – कृपण, ८९.
कीरइ – क्रियते, किया जाता है, २४.
कुडिलिय – कुटिल, ११२.
कुडुंब – कुटुम्ब, ४८.
कुणंहिं – कुर्वन्ति, करती, २११.
कुपत्त – कुपात्र, ८१.
कुभोअ – कुभोग, ८१
कुभोयण – कुभोजन ९३.
कुमुयाणंदिणि – कुमुदानन्दिनी, १९९.
कुलयर – कुलकर, १६६.
कुसियार – कोशकार, कुसियार, (रेशम का कीड़ा) १४६
कुसुमंजलि – कुसुमाञ्जलि, १९१.
कूड – कूट, ४९.
कूडतुला – कूटतुला, कपटतराजू, १६२.
कूवखणय – कूप+खनक, १०२.
कूवय – कूप+क, कुआ, ९९.
केम – किम्, कैसे, ११८.
केवलणाण – केवलज्ञान (सर्वज्ञता) ५.
कोइ – कोऽपि, कोई, ६.
कोवीण – कोपीन, १७.
कोहमल – क्रोध+मल, १११.

ख

खअ – क्षय, ६९.
खडभुस – घास+भुस, घासभुसा, ९२.
खडहड – शिला+घटा, चट्टानसमूह म. खडक–चट्टान, १५४.

खट्टइ – खट्टयति, खाता है, १५.
खट्टई – खादितेन, खाएगी, १६.
खग्ग – खड्ग, तेग, ७
खंभट्टि – [illegible], ११०
खंडिय – खण्डित, कटा, ११९
खंडिय – खण्डिका, [illegible], १५२
खंधार – स्कन्धावार, सेना, ५१
खाइ – खादति, खाता, २८.
खाणि – खानि, ४८.
खार – क्षार, खार, ८१.
खारपवह – क्षार+प्रवाह, खारा बहा, ८१
खिल्लिय – कीलित, [illegible], १०६
खीरसमुद्द – क्षीरसमुद्र, १६५.
खुड्डइ – [illegible], [illegible], १०८.
खुडिय – खुडित, छोटे गये, १५१
खेल्लिय – खेलित, खेला, ६४
खेल्ली – [illegible], [illegible], ५५.
खेरि – [illegible], १७५
खेयइ – [illegible], खेता है, १८९.
खोज – अन्वेषण, खोज, ८४.
खोडय – [illegible], खोड़ा लगी, १४८.

ग

गय – गत, गया, ६१.
गज्जइ – गर्जति, गाजता है, ४६.
गड्डायरअ – गर्त, ५८.
(a table for playing dice, Apte: Dic.)
गणिय – गणिका, गिनकर, २०५
गमणट्ठिय – गमन+स्थित, १९२.
गय – गज, १.
गय – गत, १४०.
गयण – गगन, ११२.
गविगलिट्ठ – [illegible]+[illegible], [illegible]+आसक्ति, १६४.
गह – ग्रह, १९८.
गहिय – गृहीत, १७०.
गहिर – गभीर, गहिरा, २१४.
गंधोय – गंधोदक, १८४.
गाइ – गौ, गाय, ६१.
गाल – गल, मछली पकड़ने का कांटा, ११४.
गालिय – गालित, गाला या छाना हुआ, २६.
गिण्हइ – गृह्णाति, गहता है, १६२.
गिर – गिर्, गिरा, वाणी, १०८.

गिहत्थ – गृहस्थ, ८७.
गिंदुअ – कंदुक, गेंद, १५३.
गिंभ – ग्रीष्म, ६९.
गुणवय – गुणव्रत, ११ (दिशाओं व देश प्रदेश में जाने का प्रमाण, तथा अनर्थ दण्ड का त्याग, ये तीन गुणव्रत कहलाते हैं).
गुणवंत – गुणवन्, गुणवान, १४१
गुलिय – गुलित, गुडीला (मीठा) १३३.
गुंजारिय – गुंजारित, गुंजार, २१५.
गेय – (तत्सम), गीत, १२७.
गेहोवरि – गेह+उपरि, १०२.
गोत्त – गोत्र, ४८.
गोयहि – गोपय, गोप या गुप्तरत्न, १२१.

घ

घडंति – घटायन्ते, घटयुक्त होते हैं, ९९.
घम्म – घर्म, घाम, १०३.
घयपय – घृत+पयस्, घी दूध, १८१.
घर – गृह, ८७.
घरयर – गृहकर, घर बनाने वाले, १०२.
घल्लइ – क्षिपति, घालता है, १६९.
घंट – घंटा, १९९
घाअ – घात, घाव, ६०.
घाणिंदिय – घ्राणेन्द्रिय, १२५.
घाय – घात, ७
घारइ – मूर्च्छयति, मूर्च्छित करती है, ५०, म. घेरी मूर्च्छा.
घिय – घृत, घी ३२.
घूयड – गुग्गुल, घुग्घू, १०५.

च

चइयि – त्यक्त्वा, चयकर या त्याग कर, ७३.
चउगइ – चतुर्गति, १३४.
चउत्थ – चतुर्थ, १३.
चउद्दसि – चतुर्दशी, १३
चउरट्ठ – चतुरष्ट, (बत्तीस), १२.
चउविह – चतुर्विध, १५८.
चउसट्ठि – चतुःषष्टि, चौसठ, १७६
चाक्कि – चक्रिन्, चक्रवर्ती, १७७.
चक्खइ – चखति, चखता है, १६०
चच्चइ – अर्चयति, पूजता है, १८४
चडप्फडहि – परिस्फुरति, तड़फड़ाता है, १८४.

चउप्पांडदिए – चतुष्पदं, स- मरावर, ११४.
चडदि – आरोहति, चढते है, १०२.
चत्तारंभ – त्यक्त+आरम्भ, आरंभत्यागी, १५
चम्मपट्टम – चर्मपट्टिका, ११.
चम्मट्ठिपुर – चर्म+अस्थि+पुर, ११
चत्तारि – चत्वारि, चार, ११.
चरिम – चरिम, १११.
चरित्त – चरित्र, २१४.
चलण – (चरण), पाय, १७१
चलिय – चलित, १५.
चळंत – चालत, चालणारा, १४५.
चवहि – ब्रूहि, बोल (धातु-चव) ११.
चंडाल – चाण्डाल, १११.
चंदकंति – चन्द्रकान्त (मणि), ११७.
चंदण – चन्दन, १६०.
चंदोय – चन्द्रोदय, चंदेवा, १६८.
चाय – त्याग, २५.
चाहदि – इच्छति, चाहतो है, १५९
चिराउस – चिरायुष, चिरायु, १५६.
चिहुर – चिकुर, केस, १७.
चिंध – चिह्न, ध्वज, १००.
चोज्ज – आश्चर्य, अचंबा, १००.
चोरट्टा – चोर, चोर, ७५.

छ

छट्ठय – षष्ठ, छठा, १४
छड्डिय – छर्दित, ओका, १९.
छणजामिणि – क्षण+यामिनी, पूर्णिमा रात्रि, १६९.
छणरत्ति – क्षण+रात्रि, पूर्णिमा रात्र, १००.
छत्त – छत्र, १७०.
छद – पद, छद, २०
छंडदु – छर्दतु, सोडो, १७५.
छंडि – छर्दय, सोड, ६७.
छंडिय – छर्दित, सोडून, १५.
छंडेइ – छर्दयति, सोडे, ६१.
छिज्जउ – क्षीयताम्, क्षय होवो, १२५.
छित्त – स्पृष्ट, छुआ, १११.
छुहु – क्षिप, ५८.
छेय – छेद, ७.

ज

जइ – यदि, २५.

णवइ – नमति, नवता है, ११६.
णवम – नवम, नौमां, १५.
णं – ननु, २७.
णंद – नन्द, आनन्द, १३७.
णंदीसर – नन्दीश्वर (द्वीप) २०२.
णाअ – न्याय, ११३.
णाइक्क – नायक, ५१.
णाण – ज्ञान, ७.
णाणुम्माम – ज्ञानोद्गम, १००.
णाय – नाग, १७७.
णायकुमार – नागकुमार, पु, १११.
णायदत्त – नागदत्त, पु, १११
णारि – नारी, १४.
णाव – नौ, नाव, १५४.
णाविय – नाविक, १५४.
णास – नाश, १८०
णासइ – नाशयति, नाश करता है, ३३.
णासंति – नश्यन्ति, नाश पाते हैं, ७५.
णासंति – नाशयन्ति, नाश करते हैं, ११०
णा हि – न हि, १८.

णाही – न हि, म.
णिक्कमण – निष्क्रम
णिग्गय – निर्गत,
णिच्चल – निश्चल,
णिच्छाअ – निश्च

णिट्ठ – निष्ठा, ५५.
णिट्ठुडी – निष्ठा, १
णिद्धण – निर्धन,
णिप्फल – निष्फल,
णिम्मल – निर्मल,
णिय – निज, २१
णियर – निकर, स
णियल – निगड, ग
णियलंकुस – निग

णियसत्ति – निजश
णिरग्गल – निरर्ग
णिरत्थ – निरर्थ, १
णिरारिट्ठ – निरा
णिरुम्म – निर्मम,
णिवडइ – निपत
णिवडंति – निप

णिवडिय – नि

णिवसइ – निवसति, बसता है, ५४.

णिवारदि – निवारय, निवार, १२६.

णिवारण – निवारण, १४२.

णिविट्ठ – निविष्ट, बैठा, ६१

णिवित्ति – निवृत्ति, ९०.

णिव्वाण – निर्वाण, ५१.

णिव्वाद – निर्वाद, १४१

णिस्सेणि – निश्रेणी, नसैनी, ५०.

णिहाण – निधान, ८०.

णीअ – नयत्, ले जाया हुआ, ८५.

ने – नयन्ति, ले जाते हैं, ५१.

दिअ – निन्दित, ११८

र – नीर, पानी, १६.

रुस्स – निर्दय, ७०.

ह – स्नेह, १५१.

पच्छ – नेपथ्य, १८०.

पउमणाहम – पद्मनाभिक, १०४.

पडिविज्जइ – प्रार्थ्यते, महत्वता आता है, १८१.

पडाण – प्राण, १११.

पदाणइ – प्राप्नोति, महत्वता है, १८१.

पद्दाविज्जइ – प्राप्यते, महत्वता आता है, १६८.

पद्दाविय – प्रापित, महत्वता गया, १६८.

पद्दाविय – प्रापयित्वा, पहुंचाकर, १८२.

स

सउ – स्वयम्, खुद, ५.

सउसंदय – सबीसंहित, ११

सअंभिय – सद्+प्रभिय, गाढ़, २२०.

सव्वाइय – सर्व+आदिक, १८.

सडगि – सद् इति घटेन, सद् से, १००.

सणइ – (शब्द सूचक), २०५.

सणु – तनु, शरीर, १०७.

समदरिणि – समोदारिणी, ११

सरिसण – समरा, सम से, २.

सरइ – सरति, सरता है, १२४.

सरिदद्धि – सरित्पति, सरोता,

सरंड – (सरल), होली, १

सलाध – सहाय, सलाय, १

सवयरण – साधारण, ७२.

सग – सम (अंगा सी-

तरगु – तरम, लिखे, १२
तत्था – त्यागा, लिखो, १०१
तरि – तरु, तही, ५४.
तो – तद्, (तो), १९.
तंबोलोमान – [illegible] १०
ता – तहिं, ते, १९
ताई – तहि, ते, ५०
तांहिज – तहिज, १०३.
[illegible]
[illegible]

सिद्ध – तथा, तैसे, १.
सिहि मि – [illegible], ११
सिदि – [illegible], ७४.
सुद्द – [illegible], १५१.
सुइस – [illegible] है, ४४.
सुइस – [illegible] है, १११
सुगाइम – [illegible], ४१
सुंदर – [illegible], १०
[illegible]

द

दड्ढ - दग्ध, दग्ध हुआ, ६१.
दम्म - दाम, एक सिक्का, ११५.
दय - दया, ४०.
दम्मस - दम्म, दामों, १६.
दहिमहिद - दधि + मथित, दही मही, ३५
दंसण - दर्शन (सम्यग्दर्शन, धर्म-श्रद्धा), ३०.
दंसणसुद्धि - दर्शन+शुद्धि, ३२.
दाण - दान, ७०
दाणच्चण - दान+अर्चन, ११७.
दाणंघिय - दान+अंघ्रिप, दानवृक्ष, ८२.
दायार - दातृ, दाता, ८५.
दारिय - दारिका, लड़की, ४५.
दालिद्द - दारिद्र्य, १८७.
दालिद्दड - दारिद्र्य, ९१.
दालिद्दिय - दरिद्रिन्, दरिद्री, १४८.
दावाणल - दावानल, २१४.
दिज्जइ - दीयताम्, देना चाहिये, ७०.
दिट्ठ - दृष्ट, देखी गई, ५७.
दिट्ठि - दृष्टि, ६१
दिट्ठिविस - दृष्टिविष (सर्प-विशेष), ६१
दिणयरतार - दिनकर+तार, गी सूर्य, १०५.
दिणेस - दिनेश, सूर्य, ६५
दिण्ण - दत्त, दिया हुआ, ८६.
दिण्णइ - दीयते, दिया जाय, ८१
दिंति - ददति, देते हैं, १९०.
दिवि - (स्वर्ग) स्वर्ग में, ११४.
दिव्वंबर - दिव्य+अम्बर, २०३.
दिस - दिशा, ६६
दीव - दीप, १८८.
दीवय - दीपक, ६.
दीसइ - दृश्यते, देखी जाती है, ८५.
दुक्कर - दुष्कर, ६४.
दुक्खिय - दुःखित, १३.
दुग्ग - दुर्ग, दुर्गम, १४८.
दुज्जण - दुर्जन, २.
दुट्ठभरण - दुष्ट+भरण, ६७.
दुण्णिसयइं - द्वि+शत, दो सौ, २२२.
दुत्तार - दुस्तर, २११.
दुत्तरतरणि - दुस्तर+तारिणी, २११.

दुद्ध – दुग्ध, ६५.
दुब्बल – दुर्बल, १३५.
दुरिअ – दुरित, पाप, १८७.
दुलह दुर्लभ, ३.
दुविह – द्विविध, १६.
दुव्वयण – दुर्वचन, ८८
दुह – दुःख, १११.
दुहकम्म – दुष्कर्म, १.
दुंदुहि – दुंदुभि, १७५
दूरि – दूरम्, ४४, २२
दूरिदलिय – दुर्दलित, १
दूरीकय – दूरीकृत, १५८
दूसइ – दूषयति, दूषित करता है, १११
दूसिज्जइ – दूष्यते, दूषित होती, १००
देइ – ददाति, देता है, १६
देउ – देव, ५३
देउल – देवकुल, म [illegible] १०६
[illegible] – [illegible], [illegible], ३०
दो – द्वि, दो, २८.
दोस – दोष, १९.
दोसडा – दोष, ६६.

ध

धण – धन, ३८.
धणकण – धान्य+कनक, धन-धान्य, ११.
धणचाअ – धनत्याग, १०५
धणिय – धनिक, ४४.
धण्ण – धान्य, ६४.
धण्ण – धन्य ११८
धत्तूरिय – धत्तूरित, धतूरा पीने वाला, ११६
धम्मक्खर – धर्म+अक्षर, ११६.
धम्मधेणु – धर्म+धेनु, १११.
[illegible] – धर्म+[illegible], [illegible]
[illegible]
[illegible] – [illegible], [illegible]
[illegible] – [illegible] [illegible]
[illegible], १०४
[illegible] – [illegible] ४६.
[illegible] – [illegible], १५४
[illegible] – [illegible], [illegible]
[illegible], १५०
[illegible] ([illegible]) [illegible] ६०.
[illegible] – [illegible] [illegible]
[illegible], ७७.

पसुमार – पशुमार, ६७.

पसुइ – प्रसूति, १८५.

पहनेअ – प्रभा+नेत्र, १६०.

पहाण – प्रधान, २७.

पढिल्ल – प्रथम, पहला, १७.

पंति – पंक्ति, ८७.

पंचगुरु – अर्हन्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु. ये पंचगुरु या पंचपरमेष्ठी कहलाते हैं, १

पंचाणुव्वय – पंच+अणुव्रत, ११ (गृहस्थों के पालने योग्य अहिंसा, अचौर्य, सत्य, ब्रह्मचर्य व परिग्रहप्रमाण).

पंचुंबर – पंच+उदुम्बर, १० (बड़, पीपल, पाकर, ऊमर और कठूमर)

पंडिय – पण्डित, १५२.

पंडुर – पाण्डुर, श्वेत, १७७.

पाअ – पाद, पाव, १४५.

पाअ – पाप, २०७.

पाण – प्राण, ५०.

पाणिअ – पानीय, पानी, ८९.

पाणिय – पानीय, पानी, १८.

पाय – पाद, पांव, ११७.

पायड – प्रकट, ६.

पायपसारण – पाद+प्रसारण, पांव पसारना, १४९.

पारद्धि – पापर्द्धि, शिकार, ४७.

पारद्धिअ – पापर्द्धिक, पारधी, ४६.

पारोह – प्ररोह, २००.

पालिअ – पालित, ६६.

पाव – पाप, १०१.

पावइ – प्राप्नोति, पाता है, १८१.

पावमइ – पापमति, १०६.

पावहरि – पापहारिणी, ११९.

पाविय – पापिन्, पापी, १६५.

पाविज्जइ – प्राप्यते, पाया जाता है, ९२.

पास – पाशा, खेलने के पांसे, ६८.

पास – पाश, बन्धन, २१२.

पासट्ठिय – पार्श्वस्थित, १७६.

पिच्छइ – प्रेक्षते, देखती है, १६७.

पिंड – पिण्ड, ८.

पिय – पीत, पिया, २७.

पियइ – पिबति, पीता है, २६.

पिसुण – पिशुन, १५१.

पिसुणत्तण – पिशुनत्व, १४४.

पिसुणमइ – पिशुनमति, १५०.

पिच्छइ – परिच्छिनत्ति, पहिचानता है, ६.

पब्भार – प्राग्भार, ६७.
पसूइ – प्रसूति, १८५.
पहाँतेअ – प्रभा+तेज, १६०.
पहाण – प्रधान, १७.
पहिल्ल – प्रथम, पहला, १७.
पंखि – पक्षिन्, ८७.
पंचगुरु – अर्हन्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु. ये पंचगुरु या पंचपरमेष्ठी कहलाते हैं, १
पंचाणुव्वय – पंच+अणुव्रत, ११. (गृहस्थों के पालने योग्य अहिंसा, अचौर्य, सत्य, ब्रह्मचर्य व परिग्रहप्रमाण).
पंचुंबर – पंच+उदुम्बर, १० (बड़, पीपल, पाकर, ऊमर और कठूमर)
पंडिय – पण्डित, १५९
पंडुर – पाण्डुर, श्वेत, १७७.
पाअ – पाद, पांव, १४५.
पाअ – पाप, २०७.
पाण – प्राण, ५०.
पाणिअ – पानीय, पानी, ८९.
पाणिय – पानीय, पानी, १८
पाय – पाद, पांव, ११७.
पायड – प्रकट, ६.
पायपसारण – पाद+प्रसारण, पांव पसारना, १४९.
पारद्धि – पापर्द्धि, शिकार, ४७
पारद्धिअ – पापर्द्धिक, पारधी, ४६.
पारोह – प्ररोह, २००.
पालिअ – पालित, ६६.
पाव – पाप, १०१.
पावइ – प्राप्नोति, पाता है, १८१.
पावमइ – पापमति, १०६.
पावहरि – पापहारिणी, ११९.
पाविय – पापिन्, पापी, १६५.
पाविज्जइ – प्राप्यते, पाया जाता है, १२.
पास – पाश, खेलने के पांसे, ६८.
पास – पाश, बन्धन, २११.
पासट्ठिय – पार्श्वस्थित, १७६.
पिच्छइ – प्रेक्षते, देखती है, १६७.
पिंड – पिण्ड, ८.
पिय – प्रीत, प्रिया, २७.
पियइ – पिबति, पीता है, २६.
पिसुण – पिशुन, १५१.
पिसुणत्तण – पिशुनत्व, १४४.
पिसुणमइ – पिशुनमति, १५०.
पिंछइ – परिछिनत्ति, पहिचानता है, ६.

पीय – पीत, पिया, ३२.
पुग्गल – पुद्गल, शरीर, २०५.
पुच्छिज्जइ – पृच्छयते, पूछा जाय, १२८.
पुच्छिय – पृष्ट, १६.
पुज्ज – पूजा, १५६.
पुट्ठि – पृष्ठ, पीठ, ६३.
पुट्ठिमंस – पृष्ठमांस, ४१.
पुणु – पुनः ५.
पुण्ण – पुण्य, २३.
पुण्णरासि – पुण्यराशि, २०७.
पुत्त – पुत्र, १२०.
पुरिस – पुरुष, १४२.
पुव्व – पूर्व, पहले, १५४.
पुव्वाइरिय – पूर्वाचार्य, १९.
पुंडरिय – पुण्डरीक, कमल, १७०
पूआइय – पूजादिक, २१०
पूरहिं – पूरयन्ति, पूरा करते हैं, १७.
पेक्खह – पश्य, देखो, ५१.
पेच्छह – पश्य, देखो, ११४
पेम्म – प्रेम, २१५.
पेम्मिय – प्रेमी, २०२
पेसिय – प्रेषित ६२.
पोट्ट – उदर, पेट, म. पोट, १०६.
पोट्टलि – पोट्टलिक, पोटली, १०३.
पोत्थय – पुस्तक, पोथी, १५९.
पोरिस – पौरुष, १४२.
पोसिय – पोषित, ६५.

फ

फरसिंदिय – स्पर्शेन्द्रिय, १११.
फलइ – फलति, फलता है, ७०.
फलिहसंकास – स्फटिक+सदृश, २११.
फाटइ – स्फुटति, फटता है, १४९
फुट्टिवि – स्फुटित्वा, फूटकर, १००
फुल्लिय – पुष्पित, फूला हुआ, १५.
फुल्लत्थाण – पुष्पस्थान, १४.
फोडिअ – स्फोटित, फोड़ा, २२०.

ब

बज्झण – बन्धन, बांधने से ९०.
बब्बूल – बबूर, बबूल (दो. टि. टीका ९४)
बप्पुडा – बापुरे दीन, ११०
बलिय – बलीवत् बली, १००
बहिणि – भगिनी, बहिन, ४२
बहुत्त – बहु, बहुत, ११.
बहुभेय – बहुभेद, ८१

बहुप - बहुरूप, बहुत, ४८.
बहुधेरा - बहुवेरा, १११.
बंधरा - बांधना, ४४
बंधाण - बंधन, ६४
बांध - बंधन, बांध, १०८.
बंदाण - [illegible], ५६.
बंदगारि - [illegible], १५
बारह - [illegible], बारह ५५
बाहिरड - [illegible]
[illegible] - [illegible], ११६
[illegible] - [illegible], १०
[illegible] - [illegible]
[illegible]

सवणाण - [illegible], १४.
सविणय - [illegible], ७०.
[illegible]

मणागच्छ – मनाग् + अच्छ, कुछ अच्छा; या, मण + गच्छ, मन जा, ११७.
मण्णमि – मन्ये, मानता हूं, ११८.
मण्णि – मन, म.न, (धातु-मा), ११.
मण्णिय – मानित, २४.
मणुय – मनुज, ११४.
मणुयगइ – मनुज + गति, १६१.
मणुयत्तण – मनुजत्व, ३.
मणोरह – मनोरथ, १६०.
मय – मद, १०.
मयण – मदन, मैन (bee's wax), ६७
मरइ – म्रियते, मरता है, १४६.
मरणभ – मरणम्, २.
मरंत – म्रियमाण, मरता हुआ, ७१
महइ – महति, पूजता है, १४०.
महंत – महत्, ११.
महारयण – महारत्न, १०८.
महु – मधु, ११.
महुर – मधुर, १४९.
मंजर – मार्जार, बिल्ली, ५०.
मंजिट्ठ – मंजिष्ठ, मजीठ, ५६.
मंड – मण्डित, १०६.
मंडिय – मण्डित, मांडना, २०१.
मंत – मंत्र, ११५.
मंति – मंत्रिन्, मांत्रिक, ११७.
मंदकसाय – मन्द+कषाय, १६१.
मंस – मांस, ६६.
माइ – माति, मना, ११०.
माइंदिणय – माहेन्द्र + निम्ब (वृक्षविशेष) १६०.
माण – मान, ६३.
माणाइय – मान+आदिक, १६१
माणुस – मनुष्य, ५४
माणुसजम्म – मनुष्यजन्म, ९.
मारइ – मारयति, मारता है, ६३.
माहउवरत्त – माधवरत्त (वसंतऋतु में होने वाला), १०१.
मि – अपि, भी, ५९
मिच्छत्त – मिथ्यात्व, ११६.
मिच्छादिट्ठि – मिथ्यादृष्टि, ०२
मिच्छाभाव – मिथ्याभाव, १४४.
मित्त – मित्र, ४४.
मिलिय – मिलित, मिला, ११४.
मिसइ – मुख, घोर, १४४.
मिसि – मुख, मेल या घोर ११८.
मिस – मिश्र, १०५.

रयासत्त – रागासक्त, १२६.
रेहइ – राजने, विराजता है, १७४.
रेहइ – राजने, विराजता है, ११६.
रोग – रोग, ११८.
रोहिणि – रोहिणी (उपवास विशेष) १८८.

ल

लउडिय – लकुटी, लकड़ी, १४८.
लक्ख – लाक्षा, लाख, ६७.
लग्ग – लग्न, लगा, १६
लग्गइ – लगति, लगता है, ४४.
लच्छि – लक्ष्मी, १८७.
लच्छिम – लक्ष्मी, १४१, १६१.
लद्धि – लब्धि, लाभ, ४७.
लब्भइ – लभ्यते, लाभ होता है, ७१.
लब्भंति – लभ्यन्ते, पाते हैं, २०१
लहंति – लभन्ते, पाते हैं, ९६
लहिवि – लब्ध्वा, लेकर, ८०
लहु – लघु, १०७.
लंपड – लम्पट, ११५
लाह – लाभ, ८८, १४६
लाहि – लभस्व, प्राप्त कर, १६१
लालिम – ललित, १६१
लाहु – लाभ, १६१

लित्त – लिप्त, ३१.
लिहाविय – लेखित, लिखाया, २०२.
लिहिय – लिखित, २०१.
लिहिवि – लिखित्वा, लिखकर, ४२.
लुग्ग – भग्न, जीर्ण, मार. लगा, १४९.
लेइ – लाति, लेता है, ९०.
लेहु – लाहि, लेओ (करो) १११.
लोइ – लोके, लोक में, ११५.
लोणि – नवनीत, मक्खन, ९८, व लोनी.
लोय – लोक, २०१.
लोयण – लोचन, ११८.
लोयणि – लवणी, लवणी का (उत्पत्ति ?) १७.
लोह – (लवण), लोहा, ६७
लोह – लोभ, ११४.
लोहत्थि – लोह+अर्थे, लोहे के लिये, १११.
लहसुण – लशुन, लहसुन, १४.

व

वइसाणर – वैश्वानर, अग्नि, ११

मीसिअ – मिश्रित, ३६.
मुअ – मृत, मुआ या मरा, १२४.
मुइवि – मुक्त्वा, छोड़कर, ३७.
मुक्क – मुक्त, १५.
मुक्ख – मूर्ख, १०६
मुच्चइ – मुच्यते, मुक्त होता है, ४४
मुणि – मत्वा, समझकर (धातु – ज्ञा, या मुण्) १०८.
मुणिय – मुणित, ज्ञात कथित या, (धातु–मुण प्रतिज्ञाने) ५
मुणिंद – मुनीन्द्र, ७९.
मुणेइ – मन्येत, माने, १२६.
मुत्तिअ – मौक्तिक, मोती, ९१.
मुललिअ – मूलित, मूलयुक्त, २५.
मुह – मुख, मुँह, ११८.
मुहु – मुहुः, बार बार ८२.
मुहुत्त – मुहूर्त, २८.
मूढा – मूढत्व, २०.
मेल्लि – मुक्त्वा, छोड़कर, ११०.
मेल्लिवि – मुक्त्वा, मेलकर या छोड़कर, ११७.
मोकलिय – मुक्त, ९६.
मोक्ख – मोक्ष, ७८.
मोडइ – मुञ्चेद्, मोड़े, ११०,
मोत्तिय – मौक्तिक, मोत
मोहिय – मोहित, १२६

र

रइ – रति, १२६.
रक्खहु – रक्ष, रक्खो,
रक्खिज्जइ – रक्ष्यते, रखा

रज्ज – राज्य, २००.
रडइ रटति, रटती है, १७
रय – रज, रज, १८३.
रयइ – रचयति, रचता है,
रयण्ण – रमणीय, ९१.
रसंति – रमन्ती, रमती हुई,
रहंति – रमन्ते, रहते है,
रहिअ – रहित, ५.
रंध – रन्ध्र, छिद्र, १.
राइय – राजित, १७१.
रामण रावण, ३, ६१.
रिसि – ऋषि, ५१.
रुक्खडा – वृक्ष, लता, १९०.
रुज्झइ – रुध्यते, रोका जाता १४०.
रुहिरामिस – रुधिर+आमिष, १
रूव – रूप, १२१.

रयासत्त – रूपासक्त, १२६.
रेहइ – राजते, विराजना है, १७४.
रेहइ – राजते, विराजना है, ११६.
रोस – रोष, २१८.
रोहिणि – रोहिणी (उपवास विशेष)
१८८.

ल

लकुडिय – लकुटी, लकड़ी, १४८.
लक्खर – लाक्षा, लाख, ६७.
लग्ग – लग्न, लगा, ३८.
लग्गइ – लगति, लगता है, ४४.
लच्छि – लक्ष्मी, १८७.
लच्छिम – लक्ष्मी, १४१, १९१.
लद्धि – लब्धि, लाभ, ४७.
लब्भइ – लभ्यते, लाभ होता है, ७१.
लब्भंति – लभन्ते, पाते हैं, २०१.
लहंति – लभन्ते, पाते हैं, ९९.
लहिवि – लब्ध्वा, लेकर, ८०.
लहु – लघु, २०७.
लंपड – लम्पट, ११५.
लाल – लाला, लार, १४...
लालि – लालय, ...
लालिम – ...
लाह – लाभ,

लित्त – लिप्त, ३१.
लिहावियि – लेखित, लिखाया,
२०२
लिहिय – लिखित, २०१.
लिहिवि – लिखित्वा, लिखकर,
४२.
लुग्ग – भग्न, जीर्ण, मार. लूगा,
१४९.
लेइ – लाति, लेता है, ९०.
लेहु – लाहि, लेओ (करो) १११.
लोइ – लोके, लोक में, ११५.
लोणि – नवनीत, मक्खन, २८,
म लौनी.
लोय – लोक, २०२.
लोयण – लोचन, ११८.
लोयणि – लवनी, लुवनी या
(उसरा ?) १७.
... – (तत्सम), लोहा, ६७.
– लोभ, ११४.
..., लोहे के
...२१.
...न, ३४.

...अग्नि, २१

विसकंदलि – विष+कन्दली, ५०.

विसघारिय – विष+मूर्च्छित, २१७ (देखो घारइ).

विसमेस – विष + मेष, १६१.

विसय – विषय, २१०,

विसहइ – विषहते, सहता है, १२४.

विसहर – विषधर, सर्प, ५४.

विसाल – विशाल, १९८.

विसुद्ध – विशुद्ध, ९२.

विह – विध, ९

विहडावइ वि+घटयति, विघटित करता है १५१.

विहडिथि – विघट्य, विघटकर, १००

विहाण – विधान, ७०.

विहि – विधि, २०९.

विहिय – विहित, १५९.

विहिविरहिय – विधि+विरहित, ७०

विहूइ – विभूति, १०९.

विहूण – विहीन, ११५

विसुत्तर – विशद्+उत्तर, बाद उत्तर, २२२

वुच्चइ – उच्यते, कहा जाता है, १०१.

वुड्डइ – ब्रुडति, डूबत

वुत्त – उक्त, ४.

वेइल्ल – द्विदल, दाल,

वेयण – वेदना, ४१.

वेल्लि – वल्ली, बेली, [illegible]

वेसा – वेश्या, ४१.

वेसाघर – वेश्या+गृह

स

सइं – स्वयम्, १७.

सउच्च – शौच, ७

सकिलेस – स + क्लेश, [illegible]

सक्क – शक्र, इन्द्र, १९[illegible]

सक्कइ – शक्नोति, सकता [illegible]

सग्ग – स्वर्ग, ७१,

सग्गागमण – स्वर्ग + [illegible] १[illegible]

सचिक्कण – स+कर्दम, [illegible] युक्त, १४८, म [illegible]

सच्चामर – सत् + चामर, [illegible] सत्+चामर, १०६

सज्झाय – स्वाध्याय, १००,

सण – (शणक), सन (hem[illegible] [illegible]

सण्णाण – सज्ञान, ७२

सत्तमाइ – सप्तम्, ५११, [illegible]

सत्तसयाई – सप्तशत, २१५.

सत्तट्ठम – सप्त+अष्टम, ७८.
सगास – सकाश, १५.
सत्ति – शक्ति, ९.
सत्तु – शत्रु, १४२.
सत्थ – शास्त्र, १५१.
सत्थवाह – सार्थवाह, १०५
सद्दूल – शार्दूल, ६५.
सद्द – शब्द, १०५.
सद्धाण – श्रद्धान, ११.
सन्न – सर्व, ६५.
समग्ग – समग्र, सब ही, ३०
समण – श्रमण, ४५.
समत्तरण – समवसरण, १००.
समाहिय – समाहित, ६८
समादिट्ठ – [illegible], १०१
समाहि – समाधि, ११३
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
सम्मादिट्ठि – सम्यग्दृष्टि, ७९.
सम्मुच्छाइ – सम्मूर्च्छन, सम्मू-र्छन जीवों से युक्त होता है, १८.
सयल – सकल, ७१.
सर – शर, सरोवर, १११.
सरय – शरद, ११४.
सरवर – सरोवर, १८.
[illegible] – ([illegible]), [illegible], ११४
[illegible] – [illegible], १४३
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

हैलेकेने – हैल्प करले, १०.
हैल्पटेके – हैल्प टेकते, ११०
(देखो [illegible])
हिल्लोल – हैल – जैर, ११९.
हैलन – [illegible], ११०
हैलहर – [illegible], ११२.
हैलहर – [illegible], ९८.
हैलत – [illegible], ११८.
हैतुम – [illegible], ९९.
[illegible]
[illegible], [illegible] है, १११.
[illegible], [illegible], १००
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

हुइद – हुइे, हुअे है, १११.
हुत – उत, ४.
हेहन – [illegible], १५, ११.
हेवन – हेरन, ४१.
हेडे – हटे, हेडे, ४५.
हेला – हेरन, ४१.
हेलावर – हेल + हुश, ४४.

स

सई – सब्द, १०.
सउथ – डीच, ७.
साकेलेस – स + [illegible], ११५.
सड – [illegible], ११६.
सडर – [illegible], [illegible] है, १०१
सम – सर्व, ७१.
समायानन – सर्व + अलाय, ११८.
समिसाल – [illegible], [illegible] हुआ, १४८, [illegible]
सवानर – सर + [illegible], [illegible] + अर, १०१.
सल्लाम – [illegible], १००.
सम – ([illegible]), [illegible] ([illegible]) १०.
[illegible] – [illegible], ७१.
[illegible] – [illegible], १०.
[illegible] – [illegible], ११०.

टिप्पनी

७. बृहन्निघण्टुरत्नाकर में उत्तम सुवर्ण की परीक्षा इस प्रकार बतलाई गई है–

> दाहे रक्तं सितं छेदे निकषे कुंकुमप्रभम् ।
> तारं शुल्बोज्झितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेम सत् ॥
> तच्छ्वेतं कठिनं रूक्षं विवर्णं समलं दलम् ।
> दाहे छेदे सितं श्वेतं कषे त्याज्यं लघु स्फुटम् ॥

पृ. १९१

८. **चोरहं पिडि विपडंति**– हिन्दी का मुहावरा भी यही है– चोरों के पिंड में पड़ना या पाले पड़ना। म. प्रति की टीका में '**पिडि**' का अर्थ 'पथि' अर्थात् 'मार्ग में' किया गया है।

९. श्रावक अर्थात् जैन गृहस्थ के संयम की वृद्धि के अनुसार ग्यारह दर्जे हैं जिन्हें श्रावकों की ग्यारह प्रतिमा कहते हैं। दोहा नं. १० से १७ तक इन्हीं प्रतिमाओं के लक्षण बतलाये गये हैं।

१०. 'पंच उदुम्बर' कोष में देखिये। व्यसन सात माने गये हैं, जो इस प्रकार हैं–

> द्यूतं मांसं सुरा वेश्याखेटं चौर्यं पराङ्गना ।
> महापापानि सप्तानि व्यसनानि त्यजेद् बुधः ॥

इनके त्याग का उपदेश दोहा नं. ३८ से ५१ तक पाया जायगा।

सुहिय – सुखिन्, सुखी, २.
सुणी – शुनी, कुत्ती, १४०
सूर – सूर्य, ३७.
सूरण – कन्दविशेष, सूरन, ३४.
सूरि – (स्वगम), ७.
सूरुग्गमण – सूर्योद्गम, १६०
सेहर – शेखर, २२३.
सो – स, वह, २८.
सोअ – शोक, १७१.
सोइ – सोऽपि, [illegible]
सोक्ख – सौख्य, ७४,
सोसइ – शोषयति, सोखता है, ६९
सोहग्ग – सौभाग्य, १८९

ह

हउं – अहम्, हूं (मैं), ११८.
हक्कार – आह्वान, हक्कार या हाक, ८८.
हक्कारइ – हो, इति शब्देन आह्वयति, हाक लगाता है. १७५.
हणइ – हन्ति, हनता है, ४६
हणेइ – हन्यात्, हनेगी, ४८.
हत्थ – हस्त, हाथ, ११०
हत्थिय – हस्तिन्, हाथी, १२३
हयतम – हत+तमस्, १७२
हरिणउल – हरिण+कुल, २१५.
हरिय – हरित, हरा, १४.
हरिसिय – हृष्ट, १७६.
हवेइ – हवेत्, होगा, ६२.
हलुव – लघुक, १३४, १३५.
(हेम २, १२२.)
हवइ – भवति, होता है, ८७.
हवसि – भवसि, होता है, १५५.
हवंति – भवन्ति, होते हैं, १७७.
हंसउल – हंसकुल, २१९
हारिअ – हारित, हराया, ८४.
हिय – हृत, १७.
हियइंछिअ – हृदय+इष्ट, १०१.
हियकण्णडा – हृत+कर्ण, १२७.
हियकमलिणि – हृदय + कमले, २१२.
हियडा – हृदय, ५८.
हियमहुर – हृदय+मधुर, १७८.
हियपंचल – हृदय+चंचल, २०८
हियवअ – हृदय, ५३.
हुअउ – भवतु, होवे, २२८.
हुयास – हुताश, आग, ३८.
हुयासण – हुताशन, ९८
हुय – भूत, हुई, १०९
हुवअ – भूत, हुआ, १५३
हुंति – भवन्ति, होते हैं, १८.
होइ – भवति, होता है, ६.
होउ – भवतु, होवे, २.
होसि – भवसि, होता है, १५६.
होहि – भव, हो, १२९.

टिप्पणी

७. बृहन्निघण्टुरत्नाकर में उत्तम सुवर्ण की परीक्षा इस प्रकार बतलाई गई है–

दाहे रक्तं सितं छेदे निकषे कुंकुमप्रभम्।
तारं शुल्वोज्झितं स्निग्धं कोमलं गुरु हेम सत्॥
तच्छ्वेतं कठिनं रूक्षं विवर्णं समलं दलम्।
दाहे छेदे सितं श्वेतं कषे त्याज्यं लघु स्फुटम्॥

पृ. ३११

८. चोरहं पिट्ठि चिपडंति– हिन्दी का मुहावरा भी यही है– चोरों के पीछे में पड़ना या पाले पड़ना। ब. प्रति की टीका में 'पिट्ठि' का अर्थ 'पथि' अर्थात् 'मार्ग में' किया गया है।

९. श्रावक अर्थात् जैन गृहस्थ के संयम की वृद्धि के अनुसार ग्यारह दर्जे हैं जिन्हें श्रावकों की ग्यारह प्रतिमा कहते हैं। दोहा नं. १० से १७ तक इन्हीं प्रतिमाओं के लक्षण बतलाये गये हैं।

१०. 'पंच उदुम्बर' कोष में देखिये। व्यसन सात माने गये हैं, जो इस प्रकार हैं–

द्यूतं मांसं सुरा वेश्याखेटं चौर्यं पराङ्गना।
महापापानि सप्तानि व्यसनानि त्यजेद् बुधः॥

इनके त्याग का उपदेश दोहा नं. ३८ से ५१ तक पाया जायगा।

सम्मत्त- सम्यक्त्व- का शब्दार्थ शुद्धता या यथार्थता है। जैन
में इस शब्द का प्रयोग सम्यग्दर्शन अर्थात् सच्ची दृष्टि के अर्थ में किया
है। सम्यग्दर्शन की परिभाषा यह है-

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम्॥
(रत्नकरण्डश्रावकाचार, ४)

'परमार्थ अर्थात् जैन सिद्धान्त के सात तत्त्वों तथा देव,
और मुनियों में तीन मूढ़ता और आठ मद से रहित, श्रद्धान को सम्यग्
कहते हैं। इस सम्यग्दर्शन के आठ अंग हैं।' यही लक्षण दोहा नं. १९
में कहे गये हैं। दोहा नं. ५२ भी देखिये। सम्यग्दर्शन के आठ अंगों
लिये देखिये 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' ११-१८.

११. पंचाणुव्वय- पंच अणुव्रत- कोष देखिये। पांच अणुव्रत,
गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, इन बारह व्रतों का उपदेश दोहा नं ५९ से
तक पाया जायगा।

१२. सामायिक- के अनादृतादि बत्तीस दोषों के लिये देखि
'मूलाचार' गाथा ६०३-६०७

१७ 'कत्तरिलोयणिछियचिहुर' -'कर्तरी लवना या ह
चिहुराः येन सः'। भ. प्रति की टीका में 'लोयणि' का अनुवाद 'लौंचनि
से किया गया है जिसका अर्थ या तो लोचने का शस्त्र उस्तरादि हो सकता है य
हस्तलौंच।

१९. जैनियों के सात तत्त्वों के विवरण के लिये देखिये बैरिस्टर
चम्पतरायकृत 'Practical Path.'

२०. सम्यक्त्व के पंचातिचार आठ दोष ये हैं- शंका, कांक्षा, जुगुप्सा (घृणा)

मूढ़दृष्टि (मिथ्यामत में श्रद्धान), तथा उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना का अभाव.

कुल, जाति, राज्य, रूप, बल, तप, सम्पत्ति और विद्या इनके अभिमान को मद कहते हैं।

कुगुरु, कुदेव और कुशास्त्रों की श्रद्धा का नाम मूढ़ता है। इन तीनों तथा इन तीनों के उपासकों को जो मानना है वह अनायतन कहलाता है।

२३. उपर्युक्त दोहे में कहे हुये मद्य, मांस और मधु में से प्रथम दो का वर्णन न कर इस दोहे में एकदम तीसरे का प्रसंग छेड़ा गया है। इसी कमी को पूरा करने के लिये भ प्रति में दो दोहे जोड़े गये हैं (देखो परिशिष्ट) कवि ने संभवतः उन्हें यहां इसलिये छोड़ दिया है कि उनका वर्णन आगे सात व्यसनों में आने वाला है (देखो दोहा ४१-४२)।

२४. इस दोहे का प्रथम चरण भ. प्रति में इस प्रकार है 'अणुवय अट्ठइं मण्णियइं'। इसका अर्थ होता है 'आठों' अणुव्रतों के मानने से (मधु का परिहार होता है)। किन्तु यह पाठ उपयुक्त नहीं जान पड़ता क्योंकि एक तो अणुव्रत आठ नहीं हैं पांच हैं जो द्यूत, मांस और मधु के त्याग सहित अणुव्रत नहीं मूलगुण कहलाते हैं। और दूसरे इस अर्थ से दूसरी पंक्ति की कुछ सापेक्षता नहीं बैठती।

२५. 'सत्थइं' पाठ केवल प. प्रति में है शेष सब प्रतियों में 'सागइं' पाठ है। भ. में भी 'सागइं' है और उसके अर्थ में कहा गया है 'सहित-पत्रादिकुसुमानि अपि त्यागं करोति'। यदि इसका अर्थ हम शाक (साग) करें तो अच्छा होगा। तदनुसार प्रथम चरण का अनुवाद होगा 'शाक और फूलों को छोड़ देने से' इत्यादि।

२७. प्रथम पंक्ति का अर्थ भ प्रति की टीका में इस प्रकार किया गया है- न (यः) अगालितजलं, हे जीव, अपि ज्ञात्वा यदि न प्रयाति निन्द्यं

क्रियापद 'हुंति' और विशेषण 'तुरगइं' बहुवचन में है। स. द. और म. प्रतियों में 'ओरणं' ही पाठ है।

१४ 'मूलउ माली' पढ़ना ठीक होगा। भ प्रति की टीका में इसका अर्थ 'मूल हरिद्रादि कमलनालिका' ऐसा किया गया है। इस पंक्ति का देसराजसंजोकृत किमाक्षेप की इस पंक्ति से मिलान कीजिये—

'साजि केदार तूंबड़ी सदा खाजु म नाली हिम्म तुम कपा'।

प प्रति में मिरा की जगह हिरा पाठ है। कमलनाल की साग की जगह हिरा या ढेंग अवधी कहते हैं। म. प्रति में मिरा पर टिप्पण है 'कमलगट्टे' तथा 'त्यागणयहिं' की जगह 'छागणयहिं' पाठ है और दूसरी पंक्ति की टीका है 'सूरण-कंद-फल-अच्छाणकं एतेषां स्थापिते सति सम्यक्त्वं मलिनं भवेत्'। 'अच्छाणय' से संभवतः अथाना (अचार Pickles) का तात्पर्य है।

१५. भ प्रति में 'मुलहिउ' के स्थान पर 'सुलहिउ' पाठ है और उसपर टीका है 'अन्यं यत् सुलिनं फलसंयुक्तं' इत्यादि। सुलिन से संभवतः अंकुरित का तात्पर्य है। 'मुलहिउ' से मूली या मुकुलित (कोंपी) का तात्पर्य भी कदाचित् हो सकता है।

४१. 'पुट्ठिमंस' से यहाँ कवि का क्या अभिप्राय है यह स्पष्ट समझ में नहीं आता। क्या पीठ का मांस बहुत स्वादिष्ट होता है इसलिये मांस भोजियों को उसका छोड़ना कठिन है? पृष्ठमांस का एक अर्थ 'हिंदी' में पिशुन अर्थात् चुगलखोरी भी होता है, यथा—

प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसं।
कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम्।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशंकः।
सर्वं खलस्य चरितं मशकः करोति॥

भ. प्रति में 'पुट्ठिमंपु' के स्थानपर 'पिट्ठिमंपु' पाठ है और टीकाकार ने उसका अर्थ 'धान्य की पीठी जिसमें मांस की कल्पना की गई हो' ऐसा किया है (धान्यचूर्णपीठ्यामपि मांस इति विकल्पे जाते सति सा पेठी त्यज्यते)। देवसेन कृत भावसंग्रह में कहा गया है कि गुड़ और धातकी (?) के योग से बने पिठर में मदिरा की शक्ति आजाती है। 'जह गुडधाइइजोए पिठरे जाएइ मअिरासत्ती' (१०१)। इन तीन अर्थों में से लागू हो कोई भी किया जा सकता है पर पूर्ण संतोषप्रद मुझे उनमें से एक भी नहीं ज्ञात होता। दूसरी पंक्ति में जो कवि ने शत्रु और व्याधि की उपमा दी है उससे ज्ञात होता है कि उनकी समझ में 'पुट्ठिमंस' मांसभक्षण का मूल है।

४९. इस दोहे के प्रथम चरण का अर्थ कुछ अस्पष्ट है। 'मुत्तउ' पाठ मेरा कल्पित है। पोथियों में 'मुत्तद्दु' या 'मुत्तउ' है। भ. प्रति का पाठ इस प्रकार है–' मज्जहु विलिसिहि थिमुत्तइ मुणहु हु मज्जहु दोसु ' और इसका अर्थ यह दिया गया है–' मदिरालिप्तमुखं यस्य तस्य मुखे श्वानो (श्वा) मूत्रं करोति '। यदि यह अर्थ अभीष्ट हो तो हम प्रथम चरण को इस प्रकार पढ़ सकते हैं–' मुहु विलिहिवि मुत्तइ मुणहु' (मुखं विलिह्य मूत्रयति श्वा)।

५८. इस दोहे का पाठ निश्चित करने तथा अर्थ बैठाने में बहुत कठिनाई का अनुभव हुआ है। फिर भी 'सम्मलियाहु' पाठ संदिग्ध है। शब्दों के अर्थ कोष में देखिये। भ प्रति की टीका में दोहे का अर्थ इस प्रकार दिया गया है 'गुरुदर्शनं कृत्वा मंचयन् यदा तदा पूर्णहृता भरपों मिथ्यात्वदात्मपः। एतादृशं सम्यक्त्वं हृदये सुनिधारं यस्य मनोपयागमादिमां 'समाटः' ग्रामो भवः (?) पटृति, हे जीव, धनानि जीवितव्यं धनानि आयुष्यमपि '। अ कुछ ए. एन. उपाध्ये इस दोहे का अर्थ ऐसा करते हैं ' शुद्ध या मिथ्या दर्शन, जो (आत्मा) हृदय में स्थित , हो, तो छोड़ो। मन के वश मदमाते। हे जीव, धन और आयु चंचल है।'

ने 'मुग्धर' का 'शुद्ध' अर्थ मम्मटाचार्य कृत काव्यप्रकाश, १, ८२, में प्रयुक्त 'मुग्ध' के आधार पर करते हैं। (स्वैरिणीव्यान्तर्गतमुग्धमिति नाट्य भेद-लक्षणम्)।

६२. वसुराजा की कथा इस प्रकार है। वसु स्वस्तिकावती का राजा था। वह एक ब्राह्मण पुत्र नारद और गुरुपुत्र पर्वत के साथ क्षीरकदम्ब उपाध्याय के पास विद्या पढ़ा था। गुरु की मृत्यु के पश्चात् एकबार नारद और पर्वत में 'अजैर्यष्टव्यम्' इस श्रुति के अर्थ पर विवाद खड़ा होगया। पर्वत अज का अर्थ बकरा करता था और नारद कहता था कि गुरुजी ने अज का अर्थ ब्रीहि 'तीन वर्ष के पुराने धान जो उग न सकें' यह बताया था। अन्त में उन्होंने इसके निर्णय के लिये वसु को मध्यस्थ चुना। पर्वत की माता ने वसु से अपने पुत्र के पक्ष करनेका वचन ले लिया। और तदनुसार वसु ने असत्य जानते हुए भी पर्वत के अर्थ की पुष्टि की। इस घोर असत्य के प्रभाव से वसु राजा अपने सिंहासन सहित पृथ्वी में धंस गया और फिर मर कर नरक को गया। (देखो नेमिदत्त कृत आराधना कथाकोष)।

'शाखारण्ड' वैदिक काल में उसे कहते थे जो अपनी शाखा को छोड़ कर दूसरी शाखा को स्वीकार करे। शाख का अर्थ भी शाखा है पर इस शब्द का उपयोग वृक्ष की शाखा के अर्थ में ही बहुधा देखा जाता है। संभव है 'रत्तरंड' या 'भारंड' किसी ऐसे पक्षी व कीड़े को कहते हों जिसके डाल पर बैठने से उस डाल को हानि पहुंचे।

६५ इंद्रिय-इच्छा, इच्छा करके, देखो दोहा २०१.

६६. भ प्रति में 'धाडिउ' के स्थान पर 'पाडिउ' पाठ है और उस प्रति की टीका इस प्रकार है–'येन मुकुलिते रात्रि भ्रमरा तृष्णा धर्षेन पथ, तेन संयमं उत्पाटितम्। टीकाकार 'मोक्कलिय' के अर्थ को न समझने के कारण भ्रम में पड़ गये हैं।

७० 'अयाई' का अर्थ ठीक समझ में नहीं आया। प. प्रति में इस शब्द पर 'दांत' ऐसा टिप्पण है उसी के आधार पर मैंने अनुवाद किया है।

म. प्रति में 'पुट्ठिमंसु' के स्थानपर 'पिट्ठिमंसु' पाठ है और टीकाकार ने उसका अर्थ 'धान्य की पीठी जिसमें मांस की कल्पना की गई हो ऐसा किया है (धान्यचूर्णपीठ्यामपि मांस इति विकल्पे जाते सति सा पेठी त्यज्यते)। देवसेन कृत भावसंग्रह में कहा गया है कि गुड़ और धातकी (?) के योग से बने पिष्ट में मदिरा की शक्ति आजाती है। 'जह गुडधादइजोए पिट्ठे जायइ मज्जिरासत्ती' ' (१७१)। इन तीन अर्थों में से लागू तो कोई भी किया जा सकता है पर पूर्ण संतोषप्रद मुझे उनमें से एक भी नहीं ज्ञात होता। दूसरी पंक्ति में जो कवि ने भस्म और व्याधि की उपमा दी है उससे ज्ञात होता है कि उनकी समझ में 'पुट्ठिमस' मांसभक्षण का मूल है।

४९. इस दोहे के प्रथम चरण का अर्थ कुछ अस्पष्ट है। 'मुत्तउ' पाठ मेरा कल्पित है। पोथियों में 'मुत्तहं' या 'मुत्तउ' है। म. प्रति का पाठ इस प्रकार है–' मज्जहु विलिसिहि विमुत्तई सुणहु हु मज्जउ दोसु ' और इसका अर्थ यह दिया गया है–' मदिरालिप्तमुखे यस्य तस्य मुखे श्वानो (श्वा) मूत्रं करोति '। यदि यह अर्थ अभीष्ट हो तो हम प्रथम चरण को इस प्रकार पढ़ सकते हैं–' मुहु विलिहिवि मुत्तइ सुणहु' (मुखं विलिह्य मूत्रयति श्वा)।

५८. इस दोहे का पाठ निश्चित करने तथा अर्थ बैठाने में बहुत कठिनाई का अनुभव हुआ है। फिर भी 'मयसंदिपलु' पाठ संदिग्ध है। शब्दों के अर्थ कोष में देखिये। म. प्रति की टीका में दोहे का अर्थ इस प्रकार दिया गया है 'गुरुदर्शनं कदा प्रवर्तन यथा गता दुर्लभता कस्यां मिथ्यात्वरतानयः। धनादर्शो नरकनक्य हृदये गुणिध्यानं यस्य प्रनेापयागादिनां 'मकाट:' प्राप्तो मयः (?) चटूनि, हे जीव, धनानि जीवितव्यं धनानि आयुरमपि'। ध. प्रति ए. एन. उनके इस दोहे का अर्थ ऐसा करते हैं ' गुरु का मिथ्या दर्शन, जो (अज्ञान) द्वारा मिथ्या था, सो छोड़ो। मन के वश मत रहो। हे जीव, धन और आयु चंचल हैं।'

के ' गुरुतर ' का ' क्षुद्र ' अर्थ मम्मटाचार्य कृत काव्यप्रकाश, ९, ८२, में प्रयुक्त ' मघु ' के आधार पर करते हैं। (स्वेदाम्बुसान्द्रकणशालिकपोलपालि... तस्य वेद-रूपाणाम्)।

६२. वसुराजा की कथा इस प्रकार है। वसु स्वस्तिकावती का राजा था। वह एक ब्राह्मण पुत्र नारद और गुरुपुत्र पर्वत के साथ क्षीरकदम्ब उपाध्याय के पास शिक्षा पाया था। गुरु की मृत्यु के पश्चात् एकबार नारद और पर्वत में ' अजैर्यष्टव्यम् ' इस श्रुति के अर्थ पर विवाद खड़ा होगया। पर्वत अज का अर्थ बकरा करता था और नारद कहता था कि गुरुजी ने अज का अर्थ ब्रीहि ' तीन वर्ष के पुराने धान जो उग न सकें ' यह बताया था। अन्त में उन्होंने इसके निर्णय के लिये वसु को मध्यस्थ चुना। पर्वत की माता ने वसु से अपने पुत्र के पक्ष करनेका वचन ले लिया। और तदनुसार वसु ने असत्य जानते हुए भी पर्वत के अर्थ की पुष्टि की। इस घोर असत्य के प्रभाव से वसु राजा अपने सिंहासन सहित पृथ्वी में धंस गया और फिर मर कर नरक को गया। (हरिषेण कृत आराधना कथाकोष)।

' शाखारण्ड ' वैदिक काल में उसे कहते थे जो अपनी शाखा को छोड़ कर दूसरी शाखा को स्वीकार करे। शाख का अर्थ भी शाखा है पर इस शब्द का उपयोग वृक्ष की शाखा के अर्थ में ही बहुधा देखा जाता है। संभव है ' शाखांड ' या ' भारंड ' किसी ऐसे पक्षी व कीड़े को कहते हों जिसके डाल पर बैठने से उस डाल को हानि पहुंचे।

६३. इंद्रिय-तृष्णा, इच्छा करके, देखो नोट १०६.

६६. भ. प्रति में ' पाखिंड ' के स्थान पर ' पाखिंड ' पद है और उस पंक्ति की टीका इस प्रकार है-' येन मुमुक्षिणे राति भावना तृष्णा पर्वत रथ, तेन संयमं उत्पाटितम्। टीकाकार ' वोद्दलियद ' के अर्थ को न समझने के कारण भ्रम में पड़ गये हैं।

७०. ' अयार्ह ' का अर्थ ठीक समझ में नहीं आता। प. प्रति में इस शब्द पर ' धांह ' ऐसा टिप्पन है उसी के आधार पर मैंने अनुवाद किया है।

भ प्रति में दोहे की दूसरी पंक्ति का पाठ इस प्रकार है 'णिकसइं एई टपसे किम धण्णाइ मवेइ' और इसकी टीका है 'यथा निकर्षेर्राणि एरंडयन्त्राणि धान्यानि न मवेन। (अंगुः)' प्रथम पंक्ति की टीका है 'मद्यमांसमधुपरित्यागे मनि संस्थान्ते श्रावकत्वानि।' टीकाकार का अर्थ यह ज्ञात होता है 'मद्य, मांस और मधु के परित्याग से श्रावकत्व होते हैं। एरंड के वन को तिल तुषे द्वारा शान्त किये अन्न नहीं उत्पन्न हो सकता'।

श्रीयुक्त उपाध्ये का अनुमान है कि 'भवाई' 'भू + आदि' का अपभ्रंश रूप है और तदनुसार वे दोहे का अर्थ इसप्रकार देखते हैं- 'जो मद्य, मांस और मधु का परित्याग करता है वही (शुद्ध) श्रावक होता है। एरण्डवन में से जब वृक्ष निकाल दिये जाते हैं तभी (शुद्ध) भूमि आदि रहते हैं' इन दोनों अर्थों में 'सवइ' सम्पद्यते के समरूप लिया गया है और मेरे अनुवाद में 'सवइ' 'सम्नमि' के बराबर लिया गया है।

८२ इस दोहे की देवसेनकृत भावसंग्रह की निम्नलिखित गाथा से तुलना कीजिये—

> केई पुण गयतुरया गेहे रायाण उप्पई पत्ता।
> दीसंति मच्चलोए कुच्छियपत्तस्स दाणेण ॥ ५४४ ॥

८४. 'उप्पहिं' का अर्थ अनुवाद में 'आत्मना' हिंदी-उपजकर किया गया है। भ. प्रति की टीका में उसका अर्थ 'उत्क्षिप्यते' दिया है।

८६. 'दोसडइ योहिज्जइ' का अर्थ अनुवाद में 'दोषेन कथ्यते' ऐसा लिया गया है। 'बोल' धातु अपभ्रंश में बुलाने के अर्थ में अनेक जगह आई है (देखो दोहा ८८, ११५)। किन्तु देवसेनकृत 'भावसंग्रह' में बोल (बोल) धातु कई बार 'बुड', हिंदी-बुड़ना या डूबना के अर्थ में प्रयुक्त हुई है (देखो गाथा ५४७, ५४८, आदि)। तदनुसार प्रस्तुत दोहे की प्रथम पंक्ति का अर्थ यह भी हो सकता है-'कुपात्र का दान (दाता को) दोष में

उन भ्रान्ति नहीं। यह अर्थ अधिक अच्छा प्रतीत होता है और की नाव की उपमा बहुत उपयुक्त हो जाती है।

'घडंति' का अर्थ अनुवाद में 'घटायन्ते' अर्थात् 'घटयुक्त ना लिया गया है। भ. प्रति में ज प्रति के समान 'घडंति' टीका है 'यथा जलं निकासितं (जले निष्कासिते) पुनर्नीरं (क्षीरं) आगच्छति'। अर्थात् 'जैसे कूप से जल उसमें नवीन जल आजाता है'।

. अयिणा-अविन का अर्थ मैंने पालिका या पार किया है। अर्थ संस्कृत में दीवाल या पर्वत और 'अविन' का अर्थ अवति रक्षति वहमिति, अव् + इनच्, है) होगा। इसी के अनुसार री का नाम है। भ प्रति की टीका में भी यही अर्थ किया गया नीरबंधनपालिकया विना स्फुटति नीरं न तिष्ठति'।

. योगीन्द्रदेवकृत 'परमात्मप्रकाश' में एक यह दोहा है-

इं किसिदि कारणिण जे सिवसंगु चयंति।
ज लग्गिवि ते जि मुणि देउलु देउ डहंति॥

अर्थात् कीर्तिलाभ के कारण जो शिव (मोक्ष) का संग छोड़ते हैं ही के लिये देवालय और देव को ढाते हैं। इसी के अनुसार यदि हे का यह अर्थ करें तो अच्छा होगा 'पेट के लिये जो सम्पत्ति पहुंचाता है मूर्ख सदा कौड़ी के लिये देवालय ढाते हुए)'। इसी प्रकार के भाव के लिये देखिये दोहा ११९-१२१।

-११०. इन दोहों का आशय यह प्रतीत होता है। कोई आपत्ती है कि जिस प्रकार पौद्गलिक निकट द्रव्य से बना अविनाश नहीं सी प्रकार ए टे से उत्पन्न से की हुआ कर्म नहीं हो सकता, तो यह है कि चारित्र का सम्बन्ध द्रव्य के परिणाम पर नहीं किन्तु

म प्रति में दोहे की दूसरी पंक्ति का पाठ इस प्रकार है 'णिक्कस्सइं पर॑ उप्पज्जइ जिम अप्पाइं भवेइ' और इसकी टीका है 'यथा निक॑ रालि परंदग्ध्नानि धान्यानि न भवेत। (भवतुः)' प्रथम पंक्ति की टीका है 'मद्यमांसमधुपरित्यागो भवति संपद्यन्ते श्रावकव्रतानि' टीकाकार का अर्थ यह प्रतीत होता है 'मद्य, मांस और मधु के परित्याग से श्रावकव्रत होते हैं। वृक्ष के वन को बिना कृषि द्वारा साफ किये धान्य नहीं उत्पन्न हो सकता'।

श्रीयुत उपाध्ये का अनुमान है कि 'भवाइं' 'भू + आदि' का अपभ्रंश रूप है और तदनुसार वे दोहे का अर्थ इसप्रकार देते हैं- 'जो मद्य, मांस और मधु का परित्याग करता है वही (शुद्ध) श्रावक होता है। एरण्डवन में से जब वृक्ष निकाल दिये जाते हैं तभी (शुद्ध) भूमि आदि रहते हैं' इन दोनों अर्थों में 'सपद' सम्पद्यते के समरूप लिया गया है और मेरे अनुवाद में 'सपद' 'सम्पति' के बराबर लिया गया है।

८२ इस दोहे की देवसेनकृत भावसंग्रह की निम्नलिखित गाथा से तुलना कीजिये—

केई पुण गयतुरया गेहे रायाण उप्पज्जई पत्ता।
दीसंति मच्छलोए कुच्छियपत्तस्स दाणेण॥ ५४४॥

८४. 'उप्पहिं' का अर्थ अनुवाद में 'आत्मना' हिंदी-उपलकार किया गया है। भ. प्रति की टीका में उसका अर्थ 'उत्क्षिप्यते' दिया है।

८६. 'दोसडइ बोल्लिज्जइ' का अर्थ अनुवाद में 'दोषेन कथ्यते' ऐसा लिया गया है। 'बोल' धातु अपभ्रंश में बुलाने के अर्थ में अनेक जगह आई है (देखो दोहा ८८, ११९)। किन्तु देवसेनकृत 'भावसंग्रह' में बोल (बोल) धातु कई बार 'बुड्', हिंदी-बुडना या डूबना के अर्थ में प्रयुक्त हुई है (देखो गाथा ५४७, ५४८, आदि)। तदनुसार प्रस्तुत दोहे की प्रथम पंक्ति का अर्थ यह भी हो सकता है-'कुपात्र का दान (दाता को) दोष में

हटाता है, इसमें भ्रान्ति नहीं। यह अर्थ अधिक अच्छा प्रतीत होता है और इससे पाषाण की नाव की उपमा बहुत उपयुक्त हो जाती है।

९९. 'घडंति' का अर्थ अनुवाद में 'घट्यन्ते' अर्थात् 'घटयुक्त होते हैं,' ऐसा लिया गया है। अ. प्रति में ब प्रति के समान 'घड्ंति' पाठ है और टीका है 'यथा जलं निष्कासिते (जले निष्कासिते) कूपके नूतननीरं (क्षीरं) आगच्छति'। अर्थात् 'जैसे कूप से जल निकालने पर उसमें नवीन जल आजाता है'।

१००. अघियण-अघिन का अर्थ मैंने पालिका या पार किया है। अघि का अर्थ संस्कृत में पाल या पर्वत और 'अघिन' का अर्थ पुरोहित (अघनि रक्षति मन्त्रैरिति, अघ् + इनच्, है) होता। इसी के अनुसार अघनि दूसरी का नाम है। अ प्रति की टीका में भी यही अर्थ किया गया है— 'तडागनीरबंधनपालिकया विना स्फुटति नीरं न तिष्ठति'।

१०६. योगीन्द्रदेवकृत 'परमात्मप्रकाश' में एक यह दोहा है—

लाहहं कित्तिहि कारणिण जे सिवसंगु चयंति।
खीला लग्गिवि ते वि मुणि देउलु देउ डहंति॥

अर्थात् कीर्तिलाभ के कारण जो शिव (मोक्ष) का संग छोड़ते हैं वे मुनि खीलों के लिये देवालय और देव को जलाते हैं। इसी के अनुसार यदि हम प्रस्तुत दोहे का यह अर्थ करें तो अच्छा होगा 'पेट के लिये जो पाषाणि द्वारों को दुःख पहुंचाता है वह मूर्ख क्या खीलों के लिये देवालय नहीं फोड़ता (फोड़ना)?' इसी प्रकार के भाव के लिये देखिये दोहा ११५-१२१।

१०९-११०. इन दोहों का आशय यह प्रतीत होता है। कोई व्यक्ति यदि प्रश्न करे कि जिस प्रकार ऐरावत [illegible] द्रव्य से बना [illegible] नहीं हो सकता उसी प्रकार दोहे से इस [illegible] से कोई बड़ा बने नहीं हो सकता, तो इसका उत्तर यह है कि [illegible] का [illegible] द्रव्य के परिणाम पर नहीं किन्तु

११९. अनुवाद में मणागच्छ का अर्थ मनाग् + अच्छ, कुछ अच्छे, किया गया है और इस कारण ' मन कर ' यह भाव ऊपर से मिलाना पड़ा है। किन्तु दोहा नं. १२१ के नोट के अनुसार मग का ' मा ' अर्थ लेकर प्रथम पंक्ति का यह अर्थ कर सकते हैं ' हे जीव मनोमोहनस्य गेहस्य अभिलष मा गच्छ ' है जीव मनमोहक गीत की अभिलाषा में मत जा ')। म प्रति में ' मग ' के स्थान पर ' मा ' पाठ ही है।

१२०. अनुवाद में माढिल–माढि–दैन्य (Sadness, dejection) का समरूप किया गया है। यदि हम इसे दो शब्दों में- म ढिलउ-विभाजित करदें तो दोहे का यह अर्थ भी किया जा सकता है ' गुरु के वचनरूपी अंकुश से खींच। ऐसा ढीला मत छोड़ कि यह मनरूपी हाथी शैलमरूपी हरे भरे इस को व्यर्थ ही तोड़ मोड़ डाले '। यह अर्थ अधिक अच्छा प्रतीत होता है। [illegible] का यहां अर्थ मुधा-व्यर्थ लिया गया है।

१२४ लोह शब्द श्लेषक है लोभ और लोह, (लोहा)। भावार्थ यह है कि जिस प्रकार लोहे से भरी नाव के डूबने का भय रहता है किन्तु लोहा निकाल डालने से वह सुगमता से पार लगती है उसी प्रकार लोभ का भार निकाल फेंकने से मनुष्य की संसार-यात्रा सुगम होती है। इस दोहे की देवेन्द्रकृत भावसंग्रह की निम्न लिखित गाथा से तुलना कीजिये—

लोहमए कुतरंडे लग्गो पुरिसो हु सीरलीपवाहे।
बुड्डइ जह तह बुड्डइ कुपत्तसम्माणओ पुरिसो ॥ ५४९ ॥

१२५. शब्द परिवार से तात्पर्य क्रोध, मान, माया आदि दोषों से है जो मोह के क्षीण होने से आप ही क्षीण हो जाते हैं। मोह मानो द्वार [illegible] अर्गला है जो इन चार दोषों को मनरूपी गृह में रोके हुए है।

म. प्रति में ' ' मोहु प ' पाठ है और प्रथम पंक्ति की छाया है ' यत्र मोहो दुर्वलो नास्ति तत्र इतरपरिवारस्तानि कथं क्षीयन्ते भवन्ति '। इससे पंक्ति का अर्थ ठीक कर नहीं लग सके। वे लिखते हैं

'द्वयोः पदानां (पदयोः) भावार्थं न ज्ञातं अतो मया न लिखितम् '।

१४२. ' चाइ ' शब्द ' त्यागेन ' के समरूप लिया गया है और 'ण' ' नु ' के (ण के इस अर्थ के लिये देखो कोष) । यदि उसके स्थान पर ' चाइ , पाठ लिया जावे और वह ' कवित्तें ' के साथ जोड़ दिया जावे तो यह अर्थ हो सकता है कि ' चाटु (चापलूसी) कवितों द्वारा पौरुष (का वर्णन करने) से किसी पुरुष की कीर्ति नहीं हो सकती । ' तात्पर्य यह होगा कि शत्रु को भी मीठे और उसकी प्रशंसा भरे वचनों से प्रसन्न करो। केवल वचनमात्र से उसकी कुछ कीर्ति तो हुई नहीं जाती ? इसकी निम्नलिखित श्लोक से तुलना कीजिये—

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः ।
तस्मात्तदेव दातव्यं वचने का दरिद्रता ॥

१४३ इस दोहे में ' सरसइ ' और ' समुद्दि ' द्वयर्थक प्रतीत होते हैं । सरसइ सरस्वती व सरस या स्वरस, समुद्द—समुद्र व स्वमुद्रा, या समुद्रा । अर्थात् मौन से भोजन करने वाले को भोजन के रसों का आनन्द मिलता है, सरस्वती भी सिद्ध होती है, तथा लक्ष्मी भी प्राप्त होती है क्योंकि वह समुद्र (मुद्रित मुख) में निवास करती है । संभव है कि ' लच्छिम करदु णिवासु ' में मकरद्धु णिवास [मकर (मगर) का निवास] के अर्थ का भी समावेश हो । किन्तु दोहे की रचना में इसे यथोचित रूप से योजित करना कठिन प्रतीत होता है । इस दोहे का संस्कृत रूपान्तर मैं इस प्रकार करता हूं—

भोजनं मौनेन यः करोति सरस्वती [स्वरसेन वा] सिध्यति तस्य । अथवा वसति समुद्रे (स्वकीये मुद्राङ्किते मुखे वा) और लक्ष्मीः कृत निवासम् (तस्याः) । भ. प्रति की टीका में यह कुछ अर्थ नहीं समझाया गया । टीका है ' यः पुरुषः भोजने मौनं कुर्यात् तस्य सरस्वत्याध्याय (?) भवन्ति । अथवा ये पुरुषाः स्वाध्यायेषु समुद्रिता भवन्ति ते लक्ष्मीः निवासा (?) भवन्ति '।

१४६. यहाँ 'छाल्ह' शब्द में श्लेष है। लाल लाला (लार) का पुत्र। फुलियाला-रोलवार [illegible] रेशम का कीड़ा जो अपनी लार से रेशम बनाता है और उसी के कारण मारा जाता है। अ. प्रति की टीका का अर्थ इससे भिन्न है। दूसरी पंक्ति की टीका है—'अनु इय। ब्यवसर्गाटकं सर्वस्य अंगमात्मस्य हृदयं ग्यादान्नि (ग्यादति) निर्वत्ताआत्मा मृगियाग्याः पंटिथं प्रोच्यते'। टीकाकार के भाव सिद्धि के पीछे, [illegible] अपनी [illegible] का प्रयत्न करते हैं। यदि [illegible] ठीक भी हो तो भी यह अर्थ यहाँ लागू नहीं होगा।

१४८. सामों के बचे रहने के आसपास बरसात में पीले लाखी के [illegible] (दोंड़े) लग देते हैं जिससे [illegible] और [illegible] न [illegible]। [illegible] पीछे लगाये बिना हरिद्री दुश्टों की दशा और [illegible] ही है।

अ. प्रति के टीकाकार ने यह अर्थ नहीं समझा। उसका अर्थ कुछ विचित्र ही है—'पंक इव, यथा कांचन विना पादबंधनशिल्पर्दात कार्तुलिलयोंड नि लोके [illegible] भवेत्। तथा पुरुषस्य पर्थिधा 5 दि मार्गांप्रवर्तेन पुरुषार्थो भवति (?)।

१५०. [illegible] के [illegible] रहते हैं [illegible] पर [illegible] [illegible] [illegible] में नहीं [illegible] जाय। [illegible]

१५५. [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

१५६. '[illegible]' का '[illegible]' [illegible] [illegible]

१५७. [illegible]

अतएव कंदि [स्कन्दिन्] - सूखा। अनुवाद के अर्थ के लिये ' अयाणु
जगह ' अयाण ' पाठ चाहिये। अयाणु पाठ से ठीक शब्दार्थ यह
" अज्ञानी और सूखा मत हो "। भ. प्रति की टीका कुछ और ही है
उसमें कंदि का अर्थ कथं लगाया गया है– " अमुना प्रकारेण व्या
पीडितयुक्तानां दातव्यगुणेषु अज्ञातो कथं भवसि "।

१६० भ प्रति में तीसरे चरण का पाठ भ्रष्ट है ' मेदनी मे
बंधुपवियइं ' और टीका है ' यथा बंबूलवृक्षवपने (वपने) स
आम्रफलं कथमास्वादयति '।

१६२. प्रथम पंक्ति की रचना कुछ क्लिष्ट है। निरा से विनशते
का जो अर्थ किया है वह पूर्ण संतोषप्रद नहीं है। भ. प्रति की टीका में
चरण का कुछ अर्थ ही नहीं आया। टीका है " ये प्राणिनः कूटतुल
मानोपमानं कुर्वन्ति तथा ह्रस्वदीर्घयाटकेन हीनाधिकं
विक्रयं करोति स मर्त्यो श्रावको न। तस्य धर्मः कीदृशो
नाट्यशालायां नृत्यकारिणी बहुवेषं धारयति तद्वदेषां [illegible]
करोत्येव '।

१६४ दूसरी पंक्ति का अर्थ कुछ सन्देहयुक्त है। भ. प्रति की टी
इस प्रकार है ' सम्यक्त्वेन सह श्रावकस्य व्रतानि भवंति तेन व्रते
स्वराधिपो भवति। यदि सम्यक्त्व न भवेत् तर्हि श्रावकस्या
व्रतानि न भवेत् [भवेयु] '। इस अर्थ का मूल के शब्दों से कोई संबन्ध
ही नहीं दिखता। [illegible] दोहे का संस्कृत [illegible] इस प्रकार [illegible]
है ' व्रतानि श्रावकव्रतानां उत्पद्यते गुरुराज। [illegible]
[illegible] यत्र तृणानि किं वायन्ते '। यहां दोहक ' [illegible] ' के [illegible]
लिया गया है और ' [illegible] ' का कोई [illegible] [illegible] [illegible]
अनुवाद में [illegible] का [illegible] ([illegible]) [illegible]
किया गया है।

१७१ यहां अमोड [अदोक] और तोड (तोक) का [illegible]
[illegible] है।

१७१. यह दोहा श्लेषपूर्ण है। पुष्पवृष्टि के वर्णन के साथ साथ कवि ने यहां विष्णु और जिन के भक्तों में अन्तर बतलाया है।

माहवउत्तरण-माधवशरण (वसन्तऋतु-अवलम्बी, विष्णुभक्त).
खिप्पंति-क्षिप्यन्ते, क्षुभ्यन्ति (फटने हैं या क्षुब्ध होते हैं)
सुमणस्स-सुमनस (अच्छे पुष्प, शुद्ध मनवाले).
भमिरयरियवज्जिय-भ्रमिविवर्जित (भ्रमररहित), भ्रमिरत-विवर्जित (भ्रमरहित).

१७४. वेढू-राजते, विराजता है। गुणवदी की दृष्टि से वेढ़-वेष्टने ही ठीक होगा।

१८५. श्रुतपंचमी का उपवास आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की पंचमी को माना जाता है (देखो णायकुमारचरिउ १, १०, ४.)

१८८. रोहिणी उपवास प्रत्येक मास में रोहिणी नक्षत्र के दिन माना जाता है (देखो जैनव्रतकथासंग्रह पृ. ३६)। ण-नु (देखो कोष)।

१९१. दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप, ये चार आराधना कहलाती है। इस विषय का प्राकृत में अति प्राचीन ग्रंथ भगवती-आराधना है जिसका दिगम्बर समाज में बड़ा मान है। यहां उसी की टीका करने का उल्लेख जान पड़ता है।

१९७. चंदकंति से चन्द्रकान्त मणि का तात्पर्य लिया गया है जो चंद्र की किरणों के संयोग से द्रवित होता है। यदि हम दूसरी पंक्ति को ऐसी पढ़ें 'चंद्रकंति चंदहं मिलिय पाणियादिण्ण ण ठाइ' तो इसका अर्थ यों कर सकते हैं, 'जब चंद्रकान्ति चन्द्र (पूर्णिमाचन्द्र) से मिलती है तब पानी का दैन्य (दीनता) नहीं ठहर सकता'। पूर्णिमा चन्द्र के उदय से समुद्र में ज्वारभाटा आता है यह प्रसिद्ध ही है।

२०५. प्रथम पंक्ति का भावार्थ कुछ अस्पष्ट है। ग. प्रति की टीका का अर्थ ठीक नहीं जँचता 'हे जीव, यदि त्यागं कर्तुमिच्छसि तर्हि जीवपुद्गलयोः येन सुखं प्राप्यते तत्त्यागं श्रेष्ठं कथितं। तस्य इदमेव सम्यक्त्वं कथं न जातम्'।

२१३. इस दोहे के [illegible] उसकी पूजा करते थ [illegible] है। [illegible] को करने का पूर्ण नियम हेमचन्द्र [illegible] [illegible] है [illegible] —

> [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]हिं।
> [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥ ४४४ ॥
> [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] वि ॥
> [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] माहिउं ॥ ४४५ ॥

([illegible] [illegible] के १७० [illegible] [illegible] भी देखिये)।

२१८. ये पांच शब्द क्रम से [illegible], छिद्र, [illegible], [illegible] और [illegible] के [illegible] हैं। यह [illegible] है।

२१९. यह [illegible] ([illegible]. [illegible]) मंत्र कहलाता है। इसमें दो वर्ण [illegible] होने से कुछ [illegible] [illegible] हैं।

२२०. 'पट्टोलयमणिंदिसहं' का ठीक अर्थ समझ में नहीं आया। [illegible] अच्छे अर्थ के अभाव में अनुमान से यह अर्थ दे दिया है।

पट्टोलय–पक्वतरेव ' [illegible] '। जैसे हिन्दी में कपड़े का [illegible] कहते हैं। कमरे में इस [illegible] को तानने के लिये जगह जगह उसके किनारों पर एक पत्थर का टुकड़ा देकर [illegible] दे देते हैं। इस तुच्छ कार्य के लिये जो एक बड़े बहुमूल्य रत्न के टुकड़े को उसने बता मूर्ख और कौन होगा? आप्टे के संस्कृत अंग्रेजी कोश में पटोलक का अर्थ भी एक प्रकार का वस्त्र (a kind of cloth) दिया है। गुर्जर [illegible] जिससे से मोती निकलता है को भी संस्कृत में पटोलक कहते हैं। भ. प्रति में अन्त के सात दोहों का टीका नहीं है।

२२१ द्वितीय पंक्ति में श्लेष है। जैसे दोहनेवालों को धेनु उत्तम दूध देती है उसी प्रकार यह उत्तम दोहों को पढ़नेवालों को (पढ़ने वालों को) उत्तम पद देगी। धर्मधेनुः संदोहकेभ्यः संदोहकानाम् वा, वरपयः वर-पदं वा ददाति न भ्रान्तिः।

दोहों की वर्णानुक्रमणिका

अच्छउ भोयणु ताहँ घरि १०.
अट्ठहँ कम्महँ बाहिरउ २६
अणुपेहउ देह पुच्छियउ १६.
अणुवयगुण सिक्खावयइँ ५९.
अप्पा अप्पणि जिणु १४५
अप्पा दंसणि णाणि चरणि १०१
अप्पाए जाणिहि देवइ दिव १४८.
अप्पाएँ वसिय जि गउ १०७
अप्पु जि झाइयउ पुच्छियउ १५
अप्पसरूवइँ भाविया २०.
अप्पाण अप्पइ सइँ १९.
अभयदाणु भयभीयहँ १५६
अरहंतु वि दोसहिँ रहिउ ५.
आलिय पाउ वि हउ मा पावहिँ ६१
आवइ वि जं जहिँ उप्पज्जइ ११९
आउगलइ णवि मणु गलइ ७३.
इ मिच्छत्तिय भासियउ २८
इंदियविसय विरत्तु जिय ११६
इक्कु वि णाणु मणुयहँ ८५.
इच्छइ विहि जिण भत्तहिँ ७४
इसमचउ गुणिउ जाणि ७९.
उवसमु एउ फलइ १११.
उदयचउद्दसि अट्ठमिहिँ ११.
एयहिँ दिव्वमोहालउ १२८.
ए उप्पइ एयारहइ १८.
ए चारह वय जो करइ ७२.
एक्कलउ पडिलउ हियडउ १७.
एकहिँ चिंतु तें कहिउ ९.
एवहिँ जो जिणु मुणइ १८०.
एह विहि जिणवरहँ १७९
एहु धम्मु जो आयरइ ७६.
कम्मु ण खिज्जइ केम जहिँ ९७.
कहि गोयम सामि जिणहि ९४
कइ दुलहइ पावियइ १०४.
काइँ बहुत्तइ संपयइ ८९.
कम्मरहइ परिवज्जियइँ ४५.
किं किं देइ ण धम्मतरु ९८
कुम्माणुसमाणुसहँ १६२.
खवणहँ गुणवयगुणाहिँ १३०.
खाइ भोउ ण दव्वु सहइ १८६.
गहणहँ भावइ परिभवइ २१७
गंभीएण जि णिम्मलहँ १८२
गुणवयह सह संगु करि १४१
गुरुभारभइ पवरणइ १६१
घड पुणु परिहणु पवित्तयणु १२०
घणि निर्देय घड वसि करहि १२५.
घडद्दुद देसइँ रहिउ १२.

२१२. इस दोहे में कमलाकार सिद्धचक्र बनाकर उसकी पूजा करने का उपदेश है। सिद्धचक्र को बनाने का पूर्ण विवरण देवसेनकृत भावसंग्रह की ४४२ से ४५८ गाथाओं में है। इनमें की दो गाथायें ये हैं—

> सोलहदलकमलमज्झे अरिहं विलिहेह विंदुकलसहियं।
> पंचेण वेढइत्ता उवरिं पुणु मायबीएण ॥ ४४४ ॥
>
> सोलससरेहि वेढह देहधियप्पेण अट्ठवग्गा वि ॥
> अट्ठहिं दलेहिं सुपयं अरिहंताण णमो सहियं ॥ ४४५ ॥

(वसुनन्दी श्रावकाचार की ४७० आदि गाथायें भी देखिये)।

२१४. ये पाच वर्ण क्रम से अर्हन्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु के द्योतक हैं। यह जपमंत्र है।

२१५ यह छाक्षर (यथार्थत सप्तमात्रिक) मन्त्र कहलाता है। उसमें दो वर्ण दीर्घ होने से कुल सात मात्रायें हैं।

२२०. 'पट्टोलयतग्गंधियहं' का ठीक अर्थ समझ में नहीं आया। अधिक अच्छे अर्थ के अभाव में अनुवाद में यह अर्थ दे दिया है।

पट्टोलय–पट+उल्लोच (वितान) जिसे हिन्दी में कपडे का छत कहते हैं। कमरे में इस छत को तानने के लिये जगह जगह उसके किनारों पर एक पत्थर का टुकड़ा देकर गाठ दे देते हैं। इस तुच्छ कार्य के लिये जो एक बड़े बहुमूल्य रत्न के टुकड़े करे उससे बड़ा मूर्ख और कौन होगा? आप्टे के संस्कृत-अंग्रेजी कोष में पटोल का अर्थ भी एक प्रकारका वस्त्र (a kind of cloth) दिया है। शुक्ति अर्थात् सीप जिसमें से मोती निकलता है, को भी संस्कृत में पटोलक कहते हैं। भ. प्रति में अन्त के सात दोहों की टीका नहीं है।

२२२ द्वितीय पंक्ति में श्लेष है। जैसे दोहनेवालों को धेनु उत्तम दूध देती है उसी प्रकार यह उत्तम दोहों की धर्मधेनु (पढने वालों को) उत्तम पद देगी। धर्मधेनुः संदोहकेभ्यः संदोहकानाम् या, वरपयः पर-पदं या ददाति न भ्रान्तिः।

पोट्टलियइं माणिमे त्तियइं ११०.
पोट्टहु लग्गि वि पावमइ १०६.
पोत्थय दिण्ण ण मुणिवरहं १५९.
फरसिंदिउ मा लालि जिय १२३
बंभयारि सत्तमु भणिउ १५.
बिण्णि सयइ अ सि आ उ सा ११६
भउबुच्छाहणि पायहरि १९९.
भोगह करहि पमाणु जिय ६५
भोयणु मउणें जो करइ १४३
मउयत्तणु जिय मणि धरहि ११२
मग्गइ गुरुउवएसियइं ८.
मज्जु मंसु महु परिहरइ ७७.
मज्जु मंसु महु परिहरहि २२
मज्जु मुयउ मुक्कइं मयइ ४३
मण णच्चइं मणमोहणइ १२७
...गसमकायहिं दय करहि ६०.
...उयत्तणु मुणहु लहिवि २११.
...णुयह विणयविवलियइं ११८
...हु आराहउ पोसउ नि २१.
...णइं इंदिय परमद्दिय ६३.
...मा मिल्लहि थोविय वि १२२
...हउसत्तु रिम्मंगुरउ १७३,
...इसणें णह मोडियउ ११६ -
...इ सुणदमंगारसुइ ४०
...इ कुप्पुत्पदइ ४९
...लि वयणइं सायरि मयइं १०८.
...हु सिद्धिरि गुणइ गुणहु ४१.
मूलट्ठ णाली भिराहुगुण ३४.
मूलगुणा इय एतउइं ५३.
मोहु ण छिज्जउ दुल्लउ ११५.
रहरायसचक्कमाणुसुर ३३
...महु उप्परि रइ म करि १२६.
रे जिय पुण्ण ण धम्मु किउ १५४.
लोहु मिलि चउगइसलिलु १३४.
लोहु लसत्त विणु सत्तु मयणु ६७
वसणइ सावइ छंडि जिय ५२.
वारिउ विसिद्ध जिणेसरहं १७२.
विज्जावच्चु ण वइ कियउ १५७
विज्जावच्चें विराहियउ १३९.
विणयहमाय वराणविगु १४४
विहडावइ ण हु णवइ १५१
वेदसमीसिउ दहिमहिउ १६.
वेगहि लग्गइ धणियधणु ४४
सम्माग णागह पगह १००
सम्माणेग मरत्थइं ७१
सत्तु वि मदुरइ उवसमइ १०२.
सावयत्तण विमाणियइ १०५
गहणिस्सिय बुद्धि रहइ १०१
सम्मत्ते विणु वय वि गय १०६
सम्मत्ते सावयवयइं १६४
सम्मइं कुसुमइं छंडियइं १५
सिंगइय आइट्ठ सय २०.
सिसयंउ जे कारेहि जिय ७५.
सेवें मारइ विवरइं ९९.

संतहं दिन्नु ण मटविहहे १५८
संमु दीनु सउच्चु हड ७
संतातिहिं वि धनचरई ६८
सरंभई सरस्वरहं २०४
सवरमम्मई दमलह [illegible] ७८
हुवि संघतु विर वेय विनु २१
सुरवहरि चमु नियमवे १६९
सुहियउ हुवउ नवो वि हह १५१
सुट्ठु भरउ मनुसमह ४
हसणसुगहउ स वेहह ८०
हत्थरअहं मनुसरह १६१
हरिउ ते धणु [illegible] ८४
हियअम्मडिमि समइपवास १११
हेह [illegible] ण पेतु लेहि १०९

[illegible]

संपइँ दिण्णु ण कउडिहिँ १५८.
संमउ धीणु सउण्णु सउ ७.
संसारिहिँ पि धमाइयइँ ६८
सारंभइँ सहसाइयइँ २०४
सावयधम्मइँ सयलइँ पि ७८
सुणि दंसणु जिय जेण विणु २१
सुरणरवरि जसु सिरमणि १६९.
सुहियउ हुयउ ण को वि इह १५१
सुहु णत्थउ अणुवत्तगइँ ४.
हयमयलुग्गइँ दालिदइँ ८१
हउकारभइँ अणुदमइ १६३.
हारिउ तें धणु अप्पणउ ८४
हिययकमलठिय सासइरधवल २११
होइ बलिज्जु ण पेयुलिहि १०९

कारंजा से दो ग्रन्थमालाएं प्रकाशित हो रही हैं

जिसमें निम्न लिखित अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थ
प्रकाशित हो चुके हैं–

जसहरचरिउ पुष्पदन्त कृत ६)
सावयधम्मदोहा ४॥)
णायकुमारचरिउ पुष्पदन्त कृत ६)

निम्न लिखित अपभ्रंश ग्रन्थ शीघ्र ही क्रमशः प्रकाशित होने वाले हैं–

करकंडचरिउ – कनकामरमुनि कृत.
पाहुड दोहा
प[illegible] न्दि कृत

शुद्धिपत्र.

अर्थ की दृष्टि से दोहों के पाठ व अनुवाद में जो सुधार किये जा सकते हैं वे टिप्पनी में बतलाये गये हैं। यहां केवल प्रेस की अशुद्धियों का शोधन किया जाता है।

दोहा नं.	अशुद्ध.	शुद्ध.
९.	मणुसजम्मु	माणुसजम्मु
६६	पलिउ	पालिउ
६७	पिडिउ	पडिउ
६८	उप्पज्जइं	उप्पज्जइ
१०७	गम्मु	धम्मु
११०	णिट्ठुणी	णिट्ठुरी
१३३	मिलदी	मिलदि

कारंजा से दो ग्रन्थमालाएं प्रकाशित हो रही हैं

जिनमें निम्न लिखित अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थ
प्रकाशित हो चुके हैं–

जसहरचरिउ पुष्पदन्त कृत ६)
सावयधम्मदोहा ... .. २॥)
णायकुमारचरिउ पुष्पदन्त कृत ६)

निम्न लिखित अपभ्रंश ग्रन्थ शीघ्र ही क्रमश: प्रकाशित होने वाले हैं–

करकंडचरिउ – कनकामरमुनि कृत.
पाहुड दोहा
सुदंसणचरिउ – नयनन्दि कृत
अपभ्रंशकथासंग्रह
पासचरिउ – पद्मनन्दि कृत
जम्बूसामि चरिउ – वीर कृत
महापुराण – पुष्पदन्त कृत
कथाकोष – श्रीचन्द्र कृत
पउमचरिउ – स्वयंभू कृत
हरिवंशपुराण – ,,

मिलनेका पता–मोतीलाल बनारसीदास,
पंजाब संस्कृत पुस्तकालय, लाहौर.

शुद्धिपत्र.

अर्थ की दृष्टि से दोहों के पाठ व अनुवाद में जो सुधार किये जा सकते हैं वे टिप्पनी में बतलाये गये हैं। यहां केवल प्रेस की अशुद्धियों का शोधन किया जाता है।

दोहा नं.	अशुद्ध.	शुद्ध.
९	मणुसजम्मु	माणुसजम्मु
६६	पलिउ	पालिउ
६७	पिडिउ	पडिउ
६८	उप्पज्जई	उप्पज्जइ
१०७	धम्मु	धम्मु
११५	णिट्ठुणी	णिट्ठुली
१३३	मिलही	मिलहि

कारंजा से दो ग्रन्थमालाएं प्रकाशित हो रही हैं

जिनमें निम्न लिखित अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थ
प्रकाशित हो चुके हैं–

जसहरचरिउ पुष्पदन्त कृत	६)
सावयधम्मदोहा . ..	१॥)
णायकुमारचरिउ पुष्पदन्त कृत	६)

निम्न लिखित अपभ्रंश ग्रन्थ शीघ्र ही क्रमशः प्रकाशित होने वाले हैं–

करकंडचरिउ – कनकामरमुनि कृत.
पाहुड दोहा
सुदंसणचरिउ – नयनन्दि कृत
अपभ्रंशकथासंग्रह
पासचरिउ – पद्मनन्दि कृत
जम्बूसामि चरिउ – वीर कृत
महापुराण – पुष्पदन्त कृत
कथाकोष – श्रीचन्द्र कृत
पउमचरिउ – स्वयंभू कृत
हरिवंशपुराण – "

मिलने का पता–मोतीलाल बनारसीदास,
पंजाब संस्कृत पुस्तकालय, लाहौर.